अंक : १०७

जुलाई-सितंबर २००९

# कथाबिंब

कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका

कहानियां

डॉ. निरुपमा राय, विजय शंकर विकुज, प्रमोद भार्गव, सिद्धेश्वर, मनजीत शर्मा 'मीरा'

सागर-सीपी
भारत भूषण

आमने-सामने
कपिल कुमार

१५ रूपये

**जुलाई-सितंबर २००९**
(१९७९ से प्रकाशित)

# कथाबिंब

**प्रधान संपादक**
डॉ. माधव सक्सेना "अरविंद"
**संपादिका**
मंजुश्री
**संपादन सहयोग**
प्रबोध कुमार गोविल
जय प्रकाश त्रिपाठी
अश्विनी कुमार मिश्र
हम्माद अहमद ख़ान

संपादन-संचालन पूर्णतः
अवैतनिक तथा अव्यवसायिक

●सदस्यता शुल्क●
**आजीवन** : ५०० रु., **त्रैवार्षिक** : १२५ रु.,
**वार्षिक** : ५० रु.,
(वार्षिक शुल्क ५ रु. के डाक टिकटों के रूप में भी स्वीकार्य है)
कृपया सदस्यता शुल्क चैक (कमीशन जोड़कर), मनीऑर्डर, डिमांड ड्राफ्ट द्वारा केवल "**कथाबिंब**" के नाम ही भेजें.

●रचनाएं व शुल्क भेजने का पता●
ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड,
देवनार, मुंबई - ४०० ०८८.
फोन : २५५१ ५५४१, ९८१९१६२६४८

●**"कथाबिंब" वेबसाइट पर उपलब्ध**●
**www.kathabimb.com**

e-mail : kathabimb@yahoo.com
(कृपया रचनाएं भेजने के लिए ई-मेल का प्रयोग न करें.)

प्रचार-प्रसार व्यवस्थापक :
**सुभाष गिरी**
फोन : ९३२४०४७३४०

***एक प्रति का मूल्य : १५ रु.***
कृपया नमूने की प्रति मंगाने हेतु १५ रु. के डाक टिकट अवश्य भेजें.
**(सामान्य अंक : ४०-४४ पृष्ठ)**

## क्रम

### कहानियां

|| ७ || पांच मुट्ठी मिट्टी / **डॉ. निरुपमा राय**
|| १२ || एक्सीडेंट / **विजय शंकर विकुज**
|| १७ || मुखबिर / **प्रमोद भार्गव**
|| २१ || कप वाली आइसक्रीम / **सिद्धेश्वर**
|| २५ || अंगीठी / **मनजीत शर्मा "मीरा"**

### लघुकथाएं

|| ४१ || स्टेटस / **श्याम नारायण श्रीवास्तव**
|| ४८ || महंगाई / **पंकज शर्मा**
|| ५० || मुट्ठी भर दाल / **राजेंद्र प्रसाद वर्मा**
|| ५२ || दहेज़ / **डॉ. भारती**

### ग़ज़लें / गीत / कविताएं

|| २० || ग़ज़लें / **अनिल पठानकोटी**
|| २९ || गीत / **कृपाशंकर शर्मा "अचूक"**
|| ३९ || मैं जैसा हूं ! / **लक्ष्मीकांत पांडेय**
|| ४९ || गिनती के क्षण / **मधु प्रसाद**
|| ४९ || वह जो साथ है / **रामशंकर चंचल**
|| ५० || ग़ज़लें / **अक्षय गोजा**

### स्तंभ

|| २ || "कुछ कही, कुछ अनकही"
|| ४ || लेटर बॉक्स
|| ३३ || "आमने-सामने" / **कपिल कुमार**
|| ३७ || "सागर-सीपी" / **भारतभूषण**
|| ४१ || "बाइस्कोप"(स. बजाज) / **रफ़िया मसूल उल-अमीन**
|| ४३ || "वातायन"
|| ४५ || पुस्तक-समीक्षाएं
|| ५० || परिशिष्ट

**आवरण चित्र : डॉ. अरविंद**
*(हैदराबाद स्थित रामोजी फिल्म सिटी की एक मनोरम झांकी.)*

"कथाबिंब" मुंबई की "संस्कृति संरक्षण संस्था" के सौजन्य से प्रकाशित होती है.

# कुछ कही, कुछ अनकही

विज्ञान व तकनीकी की प्रगति बहुधा जन सामान्य को ऐसे उपकरण उपलब्ध करा देती है जिनके बारे में कई बार आविष्कर्त्ता को भी भान नहीं होता कि उनका उपयोग किन-किन क्षेत्रों में और कैसे हो सकता है. मोबाइल और निजी कंप्यूटर ऐसे ही उपकरण सिद्ध हो रहे हैं. कंप्यूटर के साथ में यदि हम इंटरनेट की क्षमता को भी जोड़ दें तो फिर कहना ही क्या ! आज किसी भी भाषा के साहित्य की छपाई में कंप्यूटर बख़ूबी अपनी भूमिका निभा रहा है, यह अलग बात है कि पुराने तरह के प्रिंटिंग प्रेस अब लगभग समाप्तप्राय हो गये हैं. इसी के चलते आज ब्लॉग और ई-पत्रिकाओं की बाढ़-सी आ गयी है. यहां सवाल यह उठता है कि साहित्य का यह सृजन किस वर्ग के लिए, किस पाठक के लिए? एक तरफ तो हम यह कहते हैं कि आज के आपाधापी जीवन में लोगों के पास समय नहीं है और यदि आपके पास कंप्यूटर है भी फिर भी आप कितने समय कंप्यूटर स्क्रीन के सामने बैठे रहेंगे? छपे हुए शब्द का महत्व अपनी जगह है. किसी अच्छी पत्रिका में प्रकाशित रचना दूर-दराज़ के इलाकों में पहुंच सकती है. शायद उन पाठकों तक जिन तक लेखक दरअसल पहुंचना चाहता है. हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के संदर्भ में, ई-पत्रिकाएं पूरक तो हो सकती हैं किंतु विकल्प नहीं.

"संस्कृति संरक्षण संस्था" ने १९ सितंबर ०९ को, चेंबूर (मुंबई) के आठवीं-बारहवीं तथा स्नातक व स्नातकोत्तर विद्यार्थियों के लिए एक *"ऑन-द-स्पॉट काव्य सृजन प्रतियोगिता"* का आयोजन किया था. विजेताओं को नकद पुरस्कार दिये गये. कुछ पुरस्कृत रचनाएं इसी अंक में परिशिष्ट में दी जा रही हैं. प्रति वर्ष की भांति इस बार भी वर्ष के अंतिम अंक में *"कमलेश्वर-स्मृति कथाबिंब पुरस्कार"* का अभिमत पत्र जायेगा. सभी से आग्रह है कि प्रतियोगिता में भाग लें. यदि आपके पास वर्ष २००९ का कोई अंक नहीं है तो कृपया सूचित करें.

●

इस अंक में पिछले अंक की तरह ही पांच कहानियां दी जा रही हैं. डॉ. निरुपमा राय पाठकों के लिए नया नाम नहीं है. अपनी कहानी *"पांच मुट्ठी मिट्टी"* में उन्होंने आज की सबसे बड़ी समस्या पर्यावरण को शब्द दिये हैं कि कैसे वर्तमान पीढ़ी पर्यावरण के प्रति अपने दायित्व की अवहेलना कर रही है. विजय शंकर "विकुज" की कहानी *"एक्सीडेंट"* महज एक दुर्घटना का बयान मात्र नहीं है. कई बार आप असंपृक्त रहना चाहकर भी दुर्घटना की चपेट में आ जाते हैं. प्रमोद भार्गव की कहानी *"मुखबिर"* उहापोह में फंसे एक ऐसे आदमी का परिचय कराती है जो पुलिस का मुखबिर बन तो गया है लेकिन वह सोचने पर विवश है कि कहीं किसी बड़ी साजिश का मोहरा तो नहीं बनाया जा रहा है? सिद्धेश्वर की कहानी *"कप वाली आइस्क्रीम"* वर्तमान परिस्थितियों के दबाबों के बीच किसी तरह ईमानदार बने रहने की एक सार्थक कोशिश का बयान है. मनजीत शर्मा "मीरा" ने अपनी कहानी *"अंगीठी"* में दर्शाया है कि एक कम वयस्क लड़की स्कूल में प्राप्त ज्ञान का उपयोग कर किस प्रकार एक दरिंदे को दंड देती है. कहानी बालमन की संवेदनशीलता का एक मार्मिक बयान है.

●

प्रत्येक व्यक्ति संवेदनशील होता है, लेकिन लेखक थोड़ा अधिक और अपनी क़लम के माध्यम से वह अपने विचारों को काग़ज़ पर अभिव्यक्त करता है. संवेदनशीलता के साथ ही रचनाकार के पास पैनी दृष्टि का होना भी अति आवश्यक है तभी वह जन-हिताय, जन-सुखाय साहित्य का सृजन कर पायेगा. रचना चाहे किसी भी विधा की क्यों न हो यदि पाठक को लगे कि रचना के माध्यम से उसकी ही बात कही जा रही है तभी वह अच्छी रचना होती है. रचना पढ़कर पाठक को गर एक भरोसा मिलता है .... एक ताकत मिलती है, तभी कोई रचना सार्थक कहलाती है. सर्जक या रचनाकार के चारों ओर, वर्तमान में जो घट रहा होता है उससे वह असंपृक्त नहीं रह सकता. हमारा रोज़मर्रा का जीवन पूरी तरह देश की वर्तमान राजनीति से ही परिचालित होता है. इसलिए यह ज़रूरी है कि परिस्थितियों का विश्लेषण करते हुए, मसीजीवी-बुद्धिजीवी निरंतर स्थितियों की समीक्षा करते रहें और जब-जब आवश्यक हो हस्तक्षेप करें. तभी हम बेहतर दुनिया की अपनी तलाश जारी रख सकेंगे.

रोज़ आंकड़े बताये जाते हैं कि मुद्रास्फीति कम हो रही है, यहां तक कि यह घटकर ऋणात्मक हो गयी है ! सहज ही सवाल उठना चाहिए कि फिर कैसे हर सप्ताह चीज़ों के भाव बढ़ रहे हैं - दाल-दूध, आटा-शक्कर, मटर-मक्खन, सब्ज़ी-तेल. व्यापारियों को पूरी तरह खुली छूट है, कहीं कोई नियंत्रण नहीं है. क्या सरकार का ऐसा कोई विभाग या मंत्रालय नहीं हो सकता

है जो कीमतों का निश्चयन करे. बिना सरकारी मंजूरी के दैनिक आवश्यकता की चीज़ों के निर्माता एक निश्चित अवधि तक दाम न बढ़ा सकें ! ग़रीबी उन्मूलन की रोज़ नयी-नयी योजनाओं की घोषणाएं होती हैं किंतु ग़रीबों की स्थिति, दिन ब दिन बदतर होती जाती है. मैं जानना चाहता हूं कि मां-बाप और दो बच्चे वाला एक साधारण परिवार कम से कम कितने रुपयों में, महीने भर अपना भरण पोषण कर सकता है? बच्चों को शिक्षित कर सकता है ? एक छोटे मकान में रह सकता है ?...दो हज़ार, पांच हज़ार या दस हज़ार रुपये ! देश के वित्त मंत्री समय निकाल कर जरा इस परिवार का बजट बना कर "पेश" करें और यह भी बतायें कि यह राशि ईमानदारी से कैसे अर्जित की जाये ? आजकल टी. वी. चैनलों की बाढ़ आयी हुई है. विज्ञापनदाताओं को हर भाषा और हर क्षेत्र को कवर करना होता है. "एक छोटा-सा ब्रेक ...और कहीं न जाइएगा," यह ब्रेक कभी-कभी दस मिनट का भी होता है और हमारी जेब से कितने पैसे झटक लेता है इसका हम कतई अंदाज़ नहीं लगा सकते. अमिताभ बच्चन, अक्षय कुमार, शाहरुख ख़ान, करीना कपूर, प्रियंका चोपड़ा ....ऐसे बड़े-बड़े कलाकार जिस चीज़ का विज्ञापन करेंगे तो उसकी कीमत, उत्पादन से १५-२० गुना तो होगी ही. यह सब अप्रत्यक्ष टैक्स हमें ही देना पड़ता है और यह सब महंगाई को हवा भी देता है.

इधर बड़ी संख्या में नकली नोटों के पकड़-धकड़ के मामलों में भी अतुलनीय वृद्धि हुई है. इसमें विदेशी और देसी गिरोहों का हाथ सामने आया है. कई बार तो बैंक वालों के लिए भी नकली और असली नोटों में विभेद करना मुश्किल हो जाता है. ऐसे में जन-साधारण की कठिनाई का क्या समाधान है ? नकली नोट चाहे ५०, १००, ५०० और १००० रुपये के हों उन्हें बनाने का व्यय, श्रम व समय समान होता है. इसलिए एक सख़्त कदम उठा कर तुरत सरकार को ५०० और १००० रुपये के नोटों को समाप्त कर देना चाहिए. इस एक कदम से नकली नोटों की उपलब्धि पर तो अंकुश लगेगा ही साथ ही साथ बड़ी मात्रा में छुपा कर रखा हुआ काला धन भी बाहर आयेगा. मुद्रा की बात करते हुए अलग-अलग आकार और प्रकार के सिक्कों के चलन से उत्पन्न आम आदमी की कठिनाई को भी उजागर करना ग़लत नहीं होगा. आज जो सिक्के चल रहे हैं : आठ आना, एक रुपया, दो रुपये, पांच रुपये और दस रुपये, क्यों इनके आकार-प्रकार का कोई मानक स्वरूप नहीं है ? विशेष रूप से एक, दो और पांच के सिक्के न जाने कितनी तरह के हैं ? सिक्कों के लेन-देन में आंख वालों को मुश्किल होती है तो नेत्रहीनों को कितनी मुसीबत उठानी पड़ती होगी यह चिंता करने की फुर्सत किसके पास है. बड़े पैमाने पर सब चीज़ों में मिलावट भी एक ख़तरनाक प्रवृत्ति है. ख़ून, दवाइयां, दूध, घी, मिठाइयां, फलों को समय से पहले पकाने के लिए रसायनों का उपयोग... यह सब समाज में ज़हर बांटने जैसा कार्य है. जो मामले सामने आते हैं वे महज "आइसबर्ग" का ऊपरी हिस्सा हैं. जल्दी से जल्दी अमीर बनने की होड़ में नैतिकता की चिंता करने की कतई आवश्यकता नहीं रह गयी है. ये सब मुद्दे बहुत मामूली लग सकते हैं, लेकिन न चाहते हुए भी हमें इनसे जूझना पड़ता है.

वर्तमान में, नक्सली गतिविधियों की चपेट में देश का काफी बड़ा भू-भाग आ गया है. आये दिन सुनने में आता है कि इतने पुलिसकर्मी मौत के घाट उतार दिये गये. उसी प्रकार से कश्मीर में उग्रवादियों व आतंकवादियों से लड़ते हुए शहीद हुए सैनिकों की संख्या में भी कोई कमी नहीं आयी है. शांतिकाल में जब कहीं कोई युद्ध नहीं हो रहा है तो इतनी जानें क्यों जा रही हैं ? जब तक कोई समस्या छोटी होती है, सरकार या मीडिया का ध्यान नहीं जाता. हम तभी चेतते हैं जब कोई समस्या विकराल आकार अख्तियार कर लेती है. उत्तर-पूर्व के सातों राज्यों के लोगों को निरंतर यह अहसास रहता है कि वे मुख्यधारा से अलग हैं, न ही सरकार कोई तवज्जो देती है न मीडिया. मीडिया का सारा ध्यान, मुंबई, दिल्ली, गुजरात, चैन्ने और कोलकाता पर ही बना रहता है. ऐसा लगता है कि मीडिया का उत्तर-पूर्व से कुछ लेना-देना नहीं है. कुछ दिन पूर्व दिल्ली के उच्च न्यायालय ने ३७७ अनुच्छेद हटा दिया. ऐसा लगा कि जिस आज़ादी का देश को सदियों से इंतज़ार था वह मिल गयी ? सारे मीडिया में जश्न का माहौल था जबकि उच्चतम न्यायालय का फैसला अभी आना शेष है.

●

लोक सभा का चुनाव प्रत्येक पांच साल बाद होता है किंतु पिछले कुछ वर्षों से हर छ: महीने, साल में किसी न किसी प्रांत में विधान सभा चुनाव होते रहे हैं. चुनाव की सारी प्रक्रिया काफी खर्चीली, जटिल और श्रमसाध्य है. पूरा शासन तंत्र इसमें उलझ कर रह जाता है. सारे छोटे-बड़े नेता चुनाव प्रचार में जुटे रहते हैं. ऐसे में देश की समस्याओं की ओर ध्यान देने के लिए समय सीमित हो जाता है. यह देश की जनता के हित में गया कि लोक सभा और विधान सभा को चुनाव एक साथ हों. इसके लिए यदि संविधान में संशोधन की आवश्यकता हो तो उस दिशा में हमें कदम उठाना चाहिए.

अरविंद

# लेटर बॉक्स

❖ 'कथाबिंब' अप्रैल-जून ०९ अंक प्राप्त हुआ. अंक दो बार में पूरा पढ़ गया हूं. आपने संपादकीय में जो मुद्दे उठाये हैं वे हमारे देश की राजनीति में 'कुर्सी, परम धर्म' की संस्कृति एवं 'आम जनता भेड़ समान' की तर्ज पर जनता की छीछालेदर एवं खोखली और ओछी मानसिकता का स्पष्ट संकेत देते हैं. मगर यह बात तो इसी देश के संत तुलसीदास ने हज़ारों साल पहले लिखी थी- 'समरथ को नहीं दोष गोसांई'. सत्य ही है कि अंग्रेज़ चले गये हैं मगर वे अपने पीछे एक ऐसी जमात छोड़ गये हैं जो उनसे भी ख़तरनाक है. अब दो ही विकल्प जनता के सामने बचते हैं. पहला, वह शरणागत हो और दूसरा, बदमाश से बड़ा बदमाश बनकर सामने आये. दोनों ही स्थितियों में चक्की के पाटों के बीच आम आदमी है. बहरहाल, इस अंक की सभी कहानियां पढ़ गया हूं. 'एक थी हसीना' ने प्रभावित किया. यूं अन्य भी स्तरीय हैं. मगर इंसानी देह की ज़रूरत किस कद्र इंसान को मजबूर कर देती है कि वह दोस्त की पीठ में छुरा घोंप दे. कहानी इसे बख़ूबी उठाती है. मगर इसी कहानी में हसीना की चुप्पी लिजलिजापन एवं ग्लानि भी पैदा करती है. पुरुष का स्वभाव समझ में आता है मगर नारी भी तो कहीं उसे मूक सहमति देती ही है, जो वह इतना बड़ा कदम उठाता है. एक पुनर्विचार इस कथा पर रुख बदल सकता है. यह स्वतंत्रता लेखकीय है. अन्य रचनाओं में लघुकथाएं, कविताएं एवं ग़ज़लों ने बांधे रखा है. आपने 'कथाबिंब' के लंबे सफ़र की भी बात की है. यह एक उपलब्धि है जिस पर गर्व किया जा सकता है. सविता बजाज के माध्यम से फ़िल्मी दुनिया से जुड़े सशक्त हस्ताक्षरों की जानकारी मिल रही है.

**डॉ. प्रद्युम्न भल्ला**
✉ ५०८, किशन-प्रेम, सेक्टर-२०,
अर्बन एस्टेट, कैथल- १३६०२७

❖ 'कथाबिंब' मिला. आपके परिश्रम और प्रतिबद्धता का यह सुफल है कि आज इस पत्रिका ने १०६वीं पायदान पर पांव रखा है. कथा-पत्रिकाओं में इसकी चर्चा है. इसने कोई आंदोलन चलाने की कोशिश नहीं की. शांति से अपना काम किया. व्यक्ति, परिवार और समाज की दशा-दिशा पर साफ़-सुथरी, संवेदनशील और संदेशपरक पचासों कहानियां दीं. आपने इसके संपादन का गुरुतर भार बिना प्रमाद और प्रलाप के उठाया. वह गरिमा और दम-खम अभी आप में मौजूद है. हमारी शुभकामना है कि वह बराबर मौजूद रहे और 'कथाबिंब' कहानियों के साथ-साथ कविता साक्षात्कार, आत्मकथा, समीक्षा को भी नये आयाम दे. इस शुभेच्छा के बावजूद मुझे कहना पड़ रहा है कि इस अंक की सारी कहानियां कमज़ोर हैं और यह आश्चर्यजनक है (मराठी कहानी की बात नहीं कर रहा हूं.). कुल मिलाकर आपका संपादकीय, हस्तीमल 'हस्ती' का आत्मकथ्य और उनके शेर अच्छे लगे.

**केशव शरण**
✉ *एस २/५६४, सिकरौल,*
*वाराणसी-२२१००२*

❖ तुम्हारी पत्रिका 'कथाबिंब' मिली. मैं हर अंक की सभी रचनाएं पढ़ती हूं. सबसे पहले १०६ अंक निकालने के लिए तुम्हें ढेर सारी शुभकामनाएं. तुमने लगातार बहुत मेहनत की है. अच्छा है लोगों को साहित्य से बराबर परिचय होता रहे. लोग अच्छी रचनाएं पढ़ना चाहते हैं. इस अंक में छोटी-छोटी सुलझी कहानियां हैं.

नूर मुहम्मद 'नूर' की 'कैफ़ियत' कहानी अच्छी लगी. कुंवर प्रेमिल की 'घर, आंगन और गिरगिटान' भी अच्छी है. सीधी-सादी पत्रिका है. तुम्हारा साहित्य के प्रति रुझान है यह अच्छा है. मेरी सोच यह है कि साहित्य आदमी की आत्मा को पवित्र कर देता है. समाज के लोगों की ओर सही दृष्टि से देखने की साहित्य प्रेरणा देता है. नहीं तो इतनी भीड़ में कौन किसके बारे में सोचता है!

**गायत्री 'कमलेश्वर',**
✉ *५/११६ इरोज़ गार्डन, सूरजकुंड रोड,*
*नयी दिल्ली- ११००४४*

❖ अप्रैल-जून का अंक हस्तगत हुआ. धन्यवाद. श्री वाजपेयी के रूप में एक नये कहानीकार का हार्दिक स्वागत! इसका श्रेय निश्चित ही 'कथाबिंब' को जाता है. 'कथाबिंब' के कुछेक अंकों को पढ़कर 'स्लमडॉग' लिख डाली. भई वाह, कहानीकार द्वारा अपनी ऊर्जा का उपयोग भविष्य में भी किया जाना चाहिए. डॉ. प्रमोद अग्रवाल को भी बधाई, उनकी भी पहली कहानी 'कथाबिंब' के माध्यम ही कहानी जगत में आयी. दोनों कहानीकारों की कहानियां प्रभावित करती हैं. सीनियर कहानीकारों द्वारा नये कहानीकारों का स्वागत ज़रूर किया जाना चाहिए. मेरा पत्र लिखने का ख़ास मकसद इन नये कहानीकारों का मनोबल बढ़ाने के लिए ही मुख्य था. मराठी लेखिका उज्जवला केलकर की कहानी भी पत्रिका में पहली बार आयी है. अतः अरविंद जी ने इस अंक को नये रचनाकारों के नाम कर दिया प्रतीत होता है. सम-सामयिक 'जूते' लघुकथाएं प्रकाशित करने के लिए आभार. आभार छिंदवाड़ा के मिश्राजी को भी जिन्होंने मेरी कहानी 'घर-आंगन और गिरगिटान' पढ़कर फ़ोन पर बधाई भेजी. 'देहभक्षी', ज्योति जैन की लघुकथा झकझोरनेवाली है. अख़बार भरे पड़े हैं. इन देहभक्षियों के, अब तो देश शर्मसार होने लगा है.

**कुंवर प्रेमिल**
*✉ एम.आई.जी/८, विजयनगर,*
*जबलपुर-४८२००२ (म.प्र.)*

❖ 'कथाबिंब' निरंतर प्राप्त हो रही है. पत्रिका का कलेवर आकर्षण है तथा इसकी नियमितता व निरंतरता के साथ स्तर को भी बनाये रखना आपके पुरुषार्थ का परिणाम है.

कई बार आपके संपादकीय से असहमतियों के कारण जूझने की इच्छा भी होती है लेकिन उसको पढ़ने की इच्छा शाश्वत रहती है. विचारों में परिपक्वता व तार्किकता तभी आ सकती है जबकि हम सोच के दूसरे पक्ष को जानने-सुनने-समझने का धैर्य रख सकें.

आपकी ख़ूबी यह भी है कि अपनी विचारधारा का प्रभाव रचना-चयन पर नहीं पड़ने देते हैं तथा एकांगी अथवा एकमुखीय रचनाएं ही प्रकाशित नहीं करते हैं.

**अनंत भटनागर**
✉ ६६ कैलाशपुरी, अजमेर-३०५००१

**✍ कपिल कुमार**

हस्तीमल 'हस्ती' कहें 'कथाबिंब' में बात,
कैसे वह लिखने लगे कविता रातोंरात.
कविता रातोंरात, तुकों का अर्ध्य चढ़ाया,
फिर ग़ज़लों का हार देवता को पहनाया.
कहें 'कपिल' कविराय- 'काव्या' की प्रिय बस्ती,
सजा रहे हैं ख़ूब, आज हस्तीमल 'हस्ती'

*✉ ४ गंगा भवन, २४वां रास्ता,*
*बांद्रा (प.), मुंबई-४०००५०.*

❖ 'कथाबिंब का अप्रैल-जून ०९ मिला. अंक की कहानियां तथा लघुकथाएं पठनीय हैं. 'इच्छा-मृत्यु' (डॉ. प्रदीप अग्रवाल) ने झकझोर दिया. 'स्लमडॉग' चलताऊ लेकिन व्यंग्यपरक कहानी है. 'कैफ़ियत' में नूरजी का नूर झलकता है. 'घर आंगन और गिरगिटान' भी संवेदनापरक कहानी है और बदलते सच पर सार्थक हस्तक्षेप करती है. 'एक थी हसीना' में साहित्यिकता न होने के बावजूद कुछ तो है जो हमें सोचने को विवश करता है.

हस्तीमल 'हस्ती' जी का आत्मकथ्य निःसंदेह प्रेरक है. उनकी सादगी, सरलता तथा सहजता अनुकरणीय है. 'आमने-सामने' स्तंभ अद्वितीय है. 'सागर-सीपी' में नियाज़ साहब से मधु प्रसाद की बातचीत प्रभावी तथा उपयोगी बन पड़ी है. जिजीविषा तथा मूल्यों के साथ जीने की बात को नियाज़ साहब किसी साहित्यिक दीये की भांति पाठकों के सम्मुख रखते हैं. वे साधुवाद के पात्र हैं.

कुल मिलाकर, सदैव की भांति 'कथाबिंब' का यह अंक भी संपादकीय कौशल की प्रतिकृति है.

**राजेंद्र वर्मा**
*✉ ३/२९, विकास नगर, लखनऊ-२२६०२२*

❖ आवरण पर बारिश की ताजी हरियाली और अंदर पन्नों पर अमूल्य रचनाएं! अलग-अलग फूलों की ताजा सुंगध बिखेरता अप्रैल-जून का ताज़ा अंक बहुत प्यारा लगा. मैं तहेदिल से अरविंद जी आप और हमारे 'कथाबिंब' के पाठकों शुक्रगुज़ार हूं जो 'बाइस्कोप' के जरिए मुझ पर स्नेह के फूल बरसा रहे हैं. यदा-कदा

मुझसे फ़ोन पर या पत्र लिखकर संपर्क भी साधते हैं तो भावनाओं का आदान-प्रदान होता है. 'कथाबिंब' को मेरी ढेर सारी बधाइयां और शुभकामनाएं.

लघुकथा 'दो बूढ़े' लाजवाब है. 'इच्छा मृत्यु' कहानी के रचयिता डॉ. प्रदीप जी की रचना दुर्लभ है. पढ़कर जी भर आया. मैंने ख़ुद फ़ोन कर उन्हें बधाई दी और उन्होंने भी एक प्यारा सा एस. एम. एस. भेजा. 'स्लमडॉग' कहानी ने मुझे बहुत कुछ सोचने को मजबूर कर दिया लेकिन सोच किसी सोच से नहीं मिली. अजूब पहेली ही बनकर रह गयी काले कुत्ते की तरह. 'एक थी हसीना' की लेखिका उज्जवला केलकर को बधाई. औरत के हर रूप को उजागर किया है ठीक इंद्रधनुष के सात रंगों की तरह, जो बारिश के बाद कड़ी धूप में अपना रूप चटकाता है और जब इसका रूप ढलता है तो सारे सातों रंग मटमैले दिखते हैं. दृष्टि का भरम है बस. जीवन का सत्य भी तो यही है. कभी कुछ पाने की तमन्ना में जीवन बीत जाता है. मिलता है तो छिन जाता है. सत्य की प्यास अधूरी रह जाती है. हसीना ने जब सत्य को जाना, जीवन का मर्म समझा तो जीवन बहुत दूर खिसक चुका था. हाय रे भाग्य विधाता! मैं तो हसीना के साथ ज़ारज़ार रो दी.

**सविता बजाज**

*✉ द्वारा श्री साईनाथ एस्टेट, डी-३, बी-२,*
*सह्याद्री नगर,चारकोप, मुंबई-४०० ०६७*

❖ **'क**थाबिंब' का १०६वां अंक प्राप्त हुआ. पत्रिका के हर बार दो स्तंभ अत्यंत उत्सुक्ता से पढ़ता हूं, 'आमने-सामने' एवं 'सागर-सीपी. हस्तीमल 'हस्ती' जी का आत्मवृत्त अच्छा लगा.

नूर मुहम्मद 'नूर' की कहानी 'कैफ़ियत' बहुत अच्छी लगी. डॉ. प्रदीप अग्रवाल की 'इच्छा मृत्यु' भी निसंतान दंपत्तियों की व्यथा कथा की कहानी के माध्यम से सवाल करती है. राकेश 'चक्र' की लघुकथा 'विकास के सोपान' सटीक है.

**शशिभूषण बडोनी**

*✉ राजकीय सेंट मेरीज चिकित्सालय,*
*मसूरी (उत्तराखंड) २४८१७९*

❖ **'क**थाबिंब' का १०६वां अक प्राप्त हुआ. कुशल संपादन और स्तरीय विशेषताओं से सुसज्जित

**सा**हित्य का अमृत है,
'कथाबिंब'.
साहित्यकारों की पहली पसंद है,
'कथाबिंब'.
छोटे बड़े साहित्यकारों का मंच है,
'कथाबिंब'.
एक छोटा सा संघ है,
'कथाबिंब'.
कहानियों कविताओं का कलश है,
'कथाबिंब'.
चाहनेवालों की पहली चाहत है,
'कथाबिंब'.
पूरे घर के लोगों के पढ़ने लायक है,
'कथाबिंब'.
जिसने ना पढ़ा एक बार पढ़े,
'कथाबिंब'.
तीन महीने में एक बार आता है,
'कथाबिंब'.
५० रुपये में साल भर मिल जाता है,
'कथाबिंब'.

**बद्रीप्रसाद वर्मा 'अनजान'**

*✉ गल्लामंडी, गोलाबाजार,*
*गोरखपुर-२७३४०८,*

नूर मोहम्मद 'नूर' साहब की कहानी 'कैफ़ियत' अच्छी लगी, इंसानी हमदर्दी और मानवता का अछूता चित्रण. डॉ. प्रदीप अग्रवाल जी का कहानी लिखने का प्रयत्न कामयाब है, 'इच्छा मृत्यु'. कृष्ण सुकुमार की ग़ज़ल भली लगी. जनाब हस्तीमल 'हस्ती' साहब के विषय में विस्तार से जानने और पढ़ने की इच्छी थी, सो 'आमने-सामने' कॉलम को पढ़कर पूरी हुई. आपका आभार. 'हमारे ही क़दम छोटे थे वर्ना- यहां पर्बत कोई ऊंचा नहीं था.' शेर अच्छा लगा. मुबारक बाद हस्तीमल साहब, यह जानकर ख़ुशी हुई कि आप अगले अंक में मेरे पसंदीदा शायर गुलज़ार के विषय में कुछ छापेंगे.

**शरीफ कुरेशी**

✉ १/९१, भूसामंडी,
फ़तेहगढ़ (उ.प्र.) २०९६०१

कहानी

# पांच मुट्ठी मिट्टी

''मेरे जीते जी यह नहीं हो सकता....'' नब्बे वर्ष पार कर चुके गौरीशंकर जी का वृद्ध शरीर पीपल के सूखे पत्ते सा थरथर कांप उठा था. हाथ में पकड़ी छड़ी गिरते-गिरते बची थी. झुर्रियों से भरा, अनुभवों से पगा चेहरा लाल हो तमतमा उठा था.

''लेकिन दादाजी! आप ठंडे दिमाग़ से एक बार सोच कर तो देखिए, समय परिस्थिति और बदलता परिवेश तो विचारधाराओं को बदल डालने में समर्थ होता है. ऐसे में किसी निर्जीव वस्तु के बारे में इतना चिंतन क्या ठीक है....?''

''निर्जीव किसे कहा अखिल....? तुझे क्या पता उससे जीवंत दूसरी कोई वस्तु नहीं मेरे लिए.'' वे ज़ोर से चीख़े थे.

''दादाजी! शांत हो जाइए, पहले ही आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता....''

पोते की बात बीच में ही काटते हुए वे ज़ोर से बोले, ''हां, मैं बीमार हूं, उच्च रक्तचाप का रोगी.... जोड़ों के दर्द से बेहाल.... पर..... अभी मैं मरा नहीं हूं समझे?''

''बाबूजी! शायद अखिल ठीक ही कह रहा है.'' अब तक मौन होकर सुन रहे उनके बेटे रामनिवास ने भी पिता को समझाना चाहा.

''दादाजी! आज पहले जैसा वक़्त नहीं रहा, ज़मींदारी जा चुकी है, कमाई घटती जा रही है. ऐसे में मॉडर्न जमाने के साथ ताल मिलाकर चलना ही उचित है.... पुरानी बातें छोड़िए.....''

छोटे पोते निखिल ने कहा तो वो बुरी तरह भड़क उठे, ''अब तू मुझे उचित अनुचित का ज्ञान देगा?'' वे थरथराकर पास ही रखी चौकी पर बैठ गये.

''बाबूजी!'' रामनिवास ने उन्हें संभालना चाहा तो वो बिफर गये.

''छोड़ मुझे अभी नहीं मरूंगा मैं. पर कहे देता हूं, कान खोलकर सुन लो सब के सब.... जब तक मैं जीवित हूं, तुम लोगों को मनमानी नहीं करने दूंगा.'' सब के चले जाने के बाद भी वे बहुत देर तक बड़बड़ाते रहे.

उधर बैठक में मंत्रणा चल रही थी....

''दादाजी इतने रिजिड क्यों हैं पापा?'' अखिल ने कोफ़्त से पिता रामनिवास से पूछा. ''हा पापा, मैं भी समझ नहीं पा रही कि उन्नति की सीढ़ियां चढ़ना ग़लत..... और कई पायदान नीचे फिसलना सही कब से हो गया?'' अखिल की पत्नी रीना भी चुप नहीं रह सकी. निखिल और उसकी पत्नी माया 'मौनं स्वीकृति लक्षण' के तहत चुप बैठे थे.

''बाबूजी की संवेदनाएं उसके साथ जुड़ी हैं. बचपन की मधुर यादें... आध्यात्मिक भावनाएं... उमंगें... बहुत कुछ... इतना आसान नहीं है उन्हें इस कार्य के लिए मनाना.'' रामनिवास जी ने मायूस स्वर में कहा. एक ओर बेटों की बात आज के संदर्भ में सही लगती थी तो दूसरी ओर वृद्ध पिता की भावना का भी उन्हें खयाल था. वे बेहद दुविधा में थे.

**// डॉ. निरुपमा राय //**

उधर अपने कमरे में बिस्तर पर लेटे गौरीशंकर जी मानो अंगारों पर लोट रहे थे.

उफ़! कितनी संवेदनाहीन, भावशून्य है यह आज की पीढ़ी! अपने बुजुर्गों की कोमल भावनाओं का, सदियों से उनके मन में संचित अनुभूतियों का कोई मूल्य ही नहीं रहा इनके लिए. बस..... एक अंधी दौड़ में सब भागे चले जा रहे हैं. 'विनाशकाले विपरीत बुद्धि....' सच कह गये हैं, पुरखे. उम्र के अंतिम पड़ाव में क्या यही दिन देखना बाकी था? हे ईश्वर! क्या इसी दिन के लिए दीर्घायु दी थी? जब से होश संभाला है अमूल्य निधि की तरह उसे सहेजता आया हूं.... अब क्या अपनी संवेदनाओं को मिट्टी में मिला दूं...? अरे! यह तो सरासर कुल देवता का अपमान है.... पुरखों का अपमान है. फैसला करनेवाले मेरे पोते और उनकी

“’’

**२५ मार्च १९६४, पूर्णिमा (बिहार);**
**एम.ए.(संस्कृत), पी.एच.डी.**

**लेखन** : पहली कहानी ‘अनुभूति’ १९९९ में मधुमती में प्रकाशित, अब तक देश की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में लगभग १५० कहानियां प्रकाशित. कुछ कविताएं भी प्रकाशित, कई कहानियों व काव्य संकलनों में रचनाएं संकलित.

**प्रकाशन** : ‘और झरना बह निकला’ कहानी-संग्रह प्रकाशित. ‘विष्णु पुराण में भक्ति तत्व’ शोध ग्रंथ प्रकाशित. वेद, पुराण, उपनिषदादि से संबद्ध आलेखों का नियमित प्रकाशन. एक कहानी संग्रह व एक उपन्यास शीघ्र प्रकाश्य.

**पुरस्कार** : अनेक संस्थाओं द्वारा आयोजित कहानी प्रतियोगिताओं में पुरस्कार प्राप्त. ‘कथाबिंब’ द्वारा वर्ष २००५ व २००७ में कहानियां पुरस्कृत.

**विशेष** : प्रण्यास सदस्या, सह-संयोजक साहित्य विभाग ‘कलाभवन’ (साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संस्था), पूर्णिया.


बहुएं कौन होते हैं? जिस बात की कल्पना मात्र से सर्वांग सिहर उठता है, उसे घटित होते हुए भला मेरी आंखें कैसे देखेंगी? घर में सब की बुद्धि भ्रष्ट हो गयी हो तो क्या स्वयं को भी संज्ञाशून्य मान लूं? नहीं..... मेरे जीते जी ऐसा कुकृत्य असंभव है.

न जाने वे कब तक प्रलाप करते रहे. रामनिवास जी की पत्नी विद्या रात्रि का भोजन लेकर ससुर के कमरे में आयी तो मेज पर थाली रखती हुई बोली,''बाबूजी! खाना का लीजिए, ठंडा हो जायेगा.''

''बहू! ईश्वर से प्रार्थना करो मेरी यह नश्वर देह ही अब ठंडी हो जाय.'' वो चिढ़कर बोले.

''ऐसा मत कहें बाबूजी! हम बच्चों को समझा रहे हैं..... पर वे मानते ही नहीं. कहते हैं, आज ज़मीन के भाव आसमान छू रहे हैं.... ऐसे में एक एकड़ ज़मीन अगर बेकार पड़ी हो तो.....? वहां मिट्टी भरवा के वे फ़्लैट बना कर किराया लगाना चाहते हैं.... मैं.....''

''बेकार पड़ी है....? मैं भी तो बेकार पड़ा हूं.... कहीं से मुझे भी ज़हर ला कर दे दो सब.... मैं हाथ जोड़ता हूं.'' वे कातर होकर रो पड़े थे. विद्या ससुर को हो रही मर्मांतक पीड़ा से अनजान नहीं थी. पर क्या कहती और क्या करती? चक्की के दो पाटों के मध्य पिसते अनाज सी विवश.... कल तक जिस घर में हंसी गूंजा करती थी वहीं एक भयावह सन्नाटा पसर गया था.

सुबह हुई तो नित्य की भांति गौरीशंकर जी घर से निकलकर धीमे क़दमों से छड़ी टेकते हुए वहीं चल पड़े. जहां जाना पिछले पचासी वर्षों से उनकी आदत में रच-बस गया है.... वे धीरे-धीरे चल रहे थे और मस्तिष्क में विगत भी नन्हें नन्हें क़दम उठा रहा था...

पंडित जनार्दन पाठक उनके दादा जी, जिन्हें वे ‘बाबा’ कहा करते थे, बहुत बड़े ज़मींदार थे. सुख संपदा से उनकी झोली लबालब थी... चार पुत्रियों के बाद जन्मे कुलदीपक वासुदेव उनकी दो आंखें थे तो पोता गौरीशंकर दूसरा प्राण ही तो होगा न?

बाबा के बिना नन्हें गौरी का और नटखट गौरी के बिना बाबा का मन ही नहीं रमता था. बाबा का गौर-वर्ण.... भव्य मुखमंडल.... तेजस्वी व्यक्तित्व, भाल पर चमकता चंदन मिश्रित सिंदूर का तिलक और.... भागलपुरी सिल्क का कुर्ता, ब्रासलेट की धोती.... नन्हें गौरी के मन में अलौकिकता का संचार करते थे.

''बाबा! जब मैं बड़ा हो जाऊंगा न..... तब बिल्कुल आप जैसा बनूंगा.'' उसकी बाल-सुलभ उत्सुकता छलक उठती.

''तू तो मुझसे भी बड़ा बनेगा गौरी.'' बाबा का उल्लास मिश्रित विश्वास भी चरम पर होता.

''मैं भी आप जैसे वस्त्र पहनूंगा.... तिलक भी लगाऊंगा... लोगों पर क्रोध भी करूंगा .... रुपये गिनकर तिजोरी में रखूंगा.... और.... और सब पर खूब रौब जमाऊंगा.''

बाबा ज़ोरदार ठहाका लगाते हुए कहते, ''हां, एक कार्य और करना होगा तुझे..... याद रखना मेरे बाद.... मेरी ज़मींदारी के साथ-साथ तुझे 'नारायण पोखर' की देखभाल भी करनी होगी.''

''बाबा ! वो पोखर जहां कमल उगते हैं?''

''हां.''

''वही न, जहां हम रोज़ स्नान के लिए जाते हैं?''

''हां वहीं गौरी, पुराण कहते हैं कि ब्रह्मा और विष्णु का वास सरोवर में ही होता है.'

''पुराण क्या?''

''हमारे धर्म ग्रंथ, इन ग्रंथों में हमारी संस्कृति और जीवन पद्धति का उल्लेख है, जिन्हें हमें जीवन में उतारना चाहिए. तभी मानव जीवन सफल होता है.'' बाबा बताने लगते तो गौरी की समझ में कुछ नहीं आता, पर हां, विशाल भव्य हवेली के पीछे एक एकड़ ज़मीन में फैला बड़ा सा तालाब ज़रूर उसके आकर्षण का केंद्र बिंदु बनता गया था.

वह प्रतिदिन बाबा के साथ तालाब के घाट पर स्नान के लिए जाता था. तालाब के पश्चिमी तट को सीमेंट से चौड़ा बनवाकर तीन सीढ़ियां तालाब में उतार दी गयी थीं. पानी में उतर नन्हा गौरी ख़ूब अठखेलियां करता.... बाबा ठठाकर हंसते....'' कैसा लग रहा है?''

''बहुत अच्छा बाबा!'' वह खिलखिला उठता. जलाशय के प्रति गौरी की उत्सुकता उम्र के साथ ही उत्तरोत्तर वृद्धि पाने लगी थी. उसके पास प्रश्नों की श्रृंखला होती और बाबा के पास उत्तरों की विराट थैली. जब से होश संभाला था गौरी ने देखा था, मां, बुआ, दादी, बहनें, हर त्यौहार या पूजा-पाठ के दिन नारायण सरोवर के तट पर भी दीप, धूप, पुष्प, नैवेद्य चढ़ातीं.... वह आंखें फाड़े सब कुछ देखता रहता. मन में प्रश्न उमड़ने लगते.

''बाबा! हम सरोवर की पूजा क्यों करते हैं?''

''हमारी विराट संस्कृति में जल को भी देवता माना गया है न बेटा, इसीलिए, सोचो जरा, अगर जल ही न रहे तो दुनिया कितनी सूनी, वीरान, प्यासी और उजाड़ हो जायेगी है न?''

''हां बाबा!'' वह मनोयोग से दोनों हाथ जोड़कर आंखें मूंद जलदेवता को प्रणाम करता. उसके हृदय में सरोवर के प्रति एक स्निग्ध संवेदना का सृजन होता गया था. मानो सरोवर जल का भंडार नहीं प्रेममय... कोई जीवंत मूर्ति हो जो मन में आस्था के फूल खिलाती हो. आस्था उम्र के साथ गहराती गयी. आज क़स्बे के बीचों बीच स्थित भव्य विष्णु मंदिर की जब नींव पड़ी थी तब गौरी की उम्र मात्र दस वर्ष थी. उसकी आंखों ने मंदिर, सरोवर, बाबा और अपार जन सैलाब का अद्भुत तादात्म्य देखा था.

''बाबा! मां कहती हैं इस मंदिर में विष्णु भगवान की मूर्ति लगेगी?'' गौरी के इस प्रश्न पर बाबा ने अपनी रेशमी चादर से गर्मी से बेहाल पोते का चेहरा पोंछते हुए बहुत कुछ बताया था.

''बनारस से आ रही है भगवान चतुर्भुज विष्णु की मूर्ति.....!''

''अच्छा! कब लगेगी मंदिर में बाबा?''

''अरे! अभी कहां मुन्ना!.... कल मूर्ति आयेगी, फिर सात दिनों तक उसे सरोवर में डुबाकर रखा जायेगा.... फिर आठवें दिन मूर्ति की प्राणप्रतिष्ठा होगी....''

''सात दिनों तक.....? अपने सरोवर में.....? पर क्यों?'' गौरी की उत्सुकता सीमा का अतिक्रमण कर गयी थी.

''यही नियम है गौरी....!'' बाबा ने बताया था. बालमन कोरे काग़ज़ की भांति होता है जो भी अंकित किया जाता है वही प्रभावी हो जाता है. गौरी के मन में भी बचपन से ही सरोवर का एक प्रधान स्थान बनता गया था. पिता की असमय मृत्यु के बाद इसी तट पर उसने पिता की आत्मा की मुक्ति हेतु श्राद्ध तर्पण किया था तो मन में विषाद की उत्ताल तरंगें थीं. और इसी तट पर आहलाद और उमंगों की फुहारें भी मन को भिगो गयी थीं जब अपनी जीवनसंगिनी को बाहुपाश में समेटकर उन्होंने अपने प्रेम को सरोवर की गहराई की तरह ही गहरा और पवित्र बताया था.

आह! तभी पांव में ठोकर लगी और गौरीशंकर जी मीठे विगत से कटु वर्तमान की ओर लौटे. सामने ही सरोवर था.... उजाड़.... मौन....वीरान. वे उसी नीरव पाट पर बैठ गये जहां बचपन में चहल-पहल हुआ करती थी. जब तक वे स्वस्थ रहे, परिवार और संपत्ति की बागडोर उनके हाथ में रही सब कुछ ठीक चलता गया. पर हाय रे! आज की पीढ़ी. गांव, क़स्बे में बदला .... सुख सुविधा के साधन बढ़ते गये और मान्यताएं, परंपराएं माटी की भीत-सी ढहती गयीं. आज भले ही

इस सरोवर का जल सूखता जा रहा हो, ठीक से सफ़ाई नहीं हो पाती हो, जगह-जगह घास-फूस उग आये हों, सीढ़ियां टूट गयी हों.... पर तब इसी सरोवर के किनारे पर बरगद, पीपल आम और नीम के वृक्ष हुआ करते थे. सरोवर के जल पर महीन तंतुओं से बुनी चंदोवे सी तनी चादर की तरह ठंडी शीतल छांव हुआ करती थी. प्रतिदिन वृक्षों के तल में दीप जलाये जाते थे. बरगद का वृक्ष उस दिन विशिष्ट बन जाता जब वटसावित्री का व्रत होता. मां, दादी, बुआ, बहनें दिनभर उपवास रखतीं वट की पूजा करतीं लाल डोर से बरगद के तने को लपेटतीं कितनी भव्य लगा करती थीं. पीपल और आम के वृक्ष भी कई नियमों और सांस्कृतिक परंपराओं के वाहक थे. आज तट वीरान, जनशून्य पड़ा है... पेड़ काटकर बेच दिये गये..... हां! एक बूढ़ा नीम है.... पीली पत्तियों के रूप में आंसू बहाता. सब कुछ नष्ट-भ्रष्ट हो गया.... पर तब, वृक्ष सहेजे जाते थे अमूल्य निधि की तरह....

स्मरण है उन्हें... बचपन में एक बार उन्होंने बाबा से पूछा था,''बाबा पोखर के किनारे इतना धुंआ क्यों है?''

''वहां सरसों की खल्ली का धुंआ किया जा रहा है गौरी.''

''क्यों बाबा?''

''धुंआ करते ही चूहे और अन्य जीव भाग जायेंगे न... तट पर बिल बनाकर मिट्टी तो कमज़ोर नहीं करेंगे न. जितना मजबूत किनारा होगा सरोवर उतना ही दीर्घायु होगा.'' बाबा ने बताया था.

गौरी के पास तो प्रश्नों का अंबार होता था.... बालसुलभ मोहक प्रश्नों का.

''क्या पोखर की भी उम्र होती है बाबा?''

''हां.''

''तो क्या जैसे लोग बूढ़े होकर मर जाते हैं एक दिन नारायण सरोवर भी मर जायेगा... ?''

बाबा सहसा गंभीर हो गये थे. गहरी आंखों से पोते को देखते हुए बोल पड़े थे. ''आदमी तो बूढ़ा होकर मरेगा ही, पर एक उपाय है... नारायण पोखर बूढ़ा होने पर भी नहीं मरेगा.''

''अच्छा! वह क्यो?'' ताली बजाता गौरी उछल सा पड़ा था.

''करना बस इतना है कि हममें से जो भी स्नान करने पोखर में जाये... बस पांच मुट्ठी मिट्टी भीतर से निकालकर बाहर किनारे पर रख दे. अगर सब ऐसा करेंगे तो पानी की सफ़ाई भी होगी और सरोवर गहरा भी होता जायेगा... जिससे वर्षा के मौसम में और पानी बढ़ेगा... और पोखर कभी नहीं मरेगा.''

गौरीशंकर जी ने बाबा के कहे एक-एक शब्द को तब ही मानो आत्मा की गहराइयों में संचित कर लिया था. नन्हीं मुट्ठियों से मिट्टी उठाना शुरू करने का सिलसिला आज भी कायम था. भले ही आज घर में आधुनिक सुविधा संपन्न स्नान घर है... फिर भी वो प्रातः सरोवर स्नान ही करते थे... फिर नियम से पांच मुट्ठी मिट्टी उठाकर टूटे-फूटे जंगली घास से भरे घाट पर रखते थे. सरोवर की दुर्दशा दंश देती थी पर मन में नियम निभाने का संतोष भी था.

''बाबूजी! यहां बैठकर क्या सोच रहे हैं? चलिए नाश्ता ठंडा हो रहा है.'' बेटे ने पीछे से पुकारा तो उनकी तंद्रा भंग हुई.

''तू चल मैं स्नान करके आता हूं.'' कहते हुए वे पोखर में उतर गये.

पूरा दिन शांति से गुज़र गया. वे अकेले कमरे में लेटे रहे. शाम को घर में कुछ गहमा-गहमी महसूस की पर किसी से कुछ पूछा नहीं. सब की चुप्पी एक गूढ़ संकेत दे रही थी कि कहीं न कहीं एक ज्वालामुखी दहक रहा है जो फटेगा ज़रूर... और ज्वालामुखी फटा था... द्वेष और स्वार्थ का लावा स्नेह, प्रेम, गरिमा, अधिकार, आदर और श्रद्धा को राख़ में बदल गया था.

''दादाजी! एक एकड़ ज़मीन की कीमत करोड़ों में है आज. और आप करोड़ों रुपयों को पानी से तौल रहे हैं?''

''आज पानी की भारी कमी के कारण विश्व प्यास से जूझ रहा है. आज जब विश्व जल संरक्षण वर्ष मना रहा है.... ऐसे में लहराती जलराशि से भरा नारायण सरोवर तुम लोगों को महज ज़मीन की बर्बादी लग रहा है? अरे मूर्खों ! सरोवरों के निर्माण से मानव जन्म सफल होता है.' पुराणों की यह उक्ति केवल शास्त्रोक्त ज्ञानमात्र नहीं, विश्व कल्याण के लिए बनायी गयी वैज्ञानिक परियोजना का अंग है जो आज भी सत्य है.'' गौरीशंकर जी का स्वर क्रोध, हताशा, क्षोभ और पीड़ा से थरथरा उठा था.

सहसा कमरे में जैसे बम सा फटा. अखिल चीख़ते हुए बोला,'' अब तो संपत्ति का बंटवारा ही एकमात्र उपाय है पापा ! हम दोनों भाइयों का हिस्सा हमें देकर अलग कर दीजिए. अगर दादाजी यही चाहते हैं, तो यही सही. हम मूर्ख नहीं हैं जो परंपराओं की लाश ढोकर अपने कंधे झुका लें. हमें खुलकर जीवन जीना है. अपने बच्चों का भविष्य बेहतर बनाना है. कितने वर्ष जीवित रहेंगे दादाजी? दो वर्ष... ? पांच वर्ष! फिर इतना मोह क्यों? क्या है उस तालाब में, जहां वे मिट्टी भरने पर तैयार नहीं और ख़ून के रिश्तों पर मिट्टी डालने पर आतुर हैं? बस.... अब और नहीं, कल मैंने वकील साहब को बुलाया है, फैसला हो जायेगा.''

रामनिवास और विद्या किंकर्त्तव्यविमूढ़ से बैठे थे और वृद्ध गौरीशंकर जी तो मानो संज्ञाशून्य हो गये थे... काष्ठ प्रतिमा की तरह. उनकी भावशून्य आंखें कह रही थीं कि आज रुपया भावनाओं से ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है. प्रैक्टिकल बनते जा रहे हैं लोग... और धीरे-धीरे जड़ से उखड़ते जा रहे हैं. एक दिन अंतिम सिरा भी टूट जायेगा, और....!

पूरे घर में भयावह सन्नाटा व्याप्त हो गया था. रात्रि बीती... सुबह हुई.... वे प्रतिदिन की तरह कमरे से बाहर नहीं आये तो विद्या ससुर के कमरे में आकर चुपचाप खड़ी हो गयी.

''कौन?''

''मैं हूं बाबूजी! आप ठीक तो हैं न?''

विद्या ने चिंतातुर होकर पूछा तो गौरीशंकर जी ने सपाट स्वर में कहा, ''बहू! मेरी बात ध्यान से सुनो, मेरे जीते जी इस घर में वकील नहीं आयेगा. बंटवारा... अदालत.... द्वेष....क्रोध.... कुछ नहीं होगा. अरे! मैं क्या सब कुछ साथ समेटकर ले जाऊंगा अंतिम यात्रा में? सच ही तो कह रहा था अखिल, दो साल या ज़्यादा से ज़्यादा पांच साल बच सकूंगा. सत्य कहता हूं.... मृत्यु शैय्या पर हूं बहू! मुझे किसी चीज़ से मोह नहीं है, मोह बस रिश्तों के बंधन से था जो आज टूट गया. पर एक प्रश्न पूछता हूं, मेरे पोते क्या मेरी ख़ुशी के लिए मेरी मृत्यु तक प्रतीक्षा नहीं कर सकते थे?''

''बाबूजी!'' विद्या सन्न रह गयी थी.

''जा बुला ला बच्चों को, जो चाहें करें मुझे एतराज़ नहीं है.'' वे मुंह घुमाकर लेट गये थे.

''दादाजी! मुझे माफ़ कर दीजिए, कुछ ज़्यादा ही बोल गया.'' अखिल ने माफ़ी मांग ली थी.

''खूब तरक्की करो.'' उन्होंने आशीष भी दे दिया था.

घर में शांति थी पर गौरीशंकर जी के हृदय में मंथन चल रहा था. कुछ ही दिनों में मिट्टी भराई शुरू होनेवाली थी. आख़िरकार वह दिन आ ही गया. प्रतिदिन की भांति उस दिन भी गौरीशंकर जी प्रातः सरोवर स्नान के लिए गये, अंतिम स्नान किया.... अंतिम पांच मुट्ठियां मिट्टी की तट पर रखीं... पूर्वजों से क्षमा मांगी और अपने बिस्तर पर आकर चुपचाप लेट गये.

कानों में कई शब्द पड़ रहे थे.. 'बहुत गहरा तालाब है... सैंकड़ों ट्रेलर मिट्टी लगेगी.... बहुत ख़र्च आयेगा.... कोलाहल.... ट्रेलर की आवाज़.... और.... और एक बड़ा ट्रेलर मिट्टी सरोवर में.... हे ईश्वर!'' उनके मन में ज्वार-भाटा सा उठा, और सांस की डोर टूट गयी. कुछ ही देर में घर में कोहराम मच गया, ''बाबूजी चल बसे.'' बचपन से ही जिस सरोवर से पांच मुट्ठी मिट्टी निकालते आये थे, उसी में सैंकड़ों ट्रेलर मिट्टी गिरते हुए भला उनकी आत्मा कैसे देख सकती थी? उनकी मृत्यु इस सत्य की साक्षी थी कि सरोवर की भी मौत होती है. जीवनदायी जल भी मरता है.

**द्वारा श्री शंभुनाथ झा**
**उर्सलाइन कान्वेंट रोड, रंगभूमि हाता,**
**पूर्णिया (बिहार) ८५४३०१**
**फ़ोन : ९४३०३२७४१८**

कहानी

# एक्सीडेंट

धड़ाम! धड़ाम !! धड़ाम !!!

आसपास कहीं जैसे बादल फटा हो. कानों के पर्दे झनझना देने जैसी आवाज़ थी. हाथों से छूटकर कॉलगेट का झाग भरा ब्रश बाथरूम में नीचे गिर गया. कलेजा धड़क उठा तो मन भी बेचैन हो गया. क्या हुआ रे भाई! निश्चय ही बाहर कुछ हुआ है.

मैंने तुरंत पानी से कुल्ला किया और हाथों से मुंह पोछता हुआ बालकनी की ओर भागा. वहां से सामने कुछ दूरी पर जो दृश्य नज़र आया, उसने मुझे जड़ बना दिया. धर्मतला रूट की एक बस ने खालपुल पर एक मेटाडोर को ज़ोरदार धक्का मारा था. धक्के से मेटाडोर तिरछा हो गया था और बस आगे जाकर खाल पुल से टकरा गयी थी. बस के यात्री खौफ भरे चेहरे के साथ उतरकर भाग रहे थे.

आसपास के लोग घटनास्थल की ओर दौड़ रहे थे. माहौल में शोर पैदा होने लगा था,''अरे एक्सीडेंट हो गया.... मेटाडोर का ड्राइवर मर गया.... चक्के के नीचे एक आदमी आ गया है.... दौड़ो.... अरे भाई बचाओ.....''

शोर ने चेतना को करंट-सा झटका मारा. मैं ध्यान से देखने लगा कि एक्सीडेंट कैसे हुआ होगा और क्या-क्या हुआ है. तब तक मेरे पीछे मेरी पत्नी लीना और घर की नौकरानी मालती भी आ खड़ी हुई. सामने की ओर निहारती लीना बड़बड़ा उठी, ''अरे! यह तो बहुत भयंकर एक्सीडेंट हो गया है. पता नहीं कितने लोग.....?''

''लगता है दो-चार आदमी जान से तो ज़रूर गये होंगे. मेटाडोर सामने से चकनाचूर हो गया है. ड्राइवर-खलासी नहीं बचे होंगे.... चक्के के नीचे भी एक आदमी आ गया है,'' लीना के बगल में खड़ी मालती ने उचकते हुए कहा.

''हां,'' मैंने धीरे से कहा मगर मेरी नज़रें दुर्घटना के सर्वेक्षण में उस ओर टिकी हुई थीं. खाल पुल पर मेटाडोर के सामने का हिस्सा बस की ज़ोरदार टक्कर से बुरी तरह पिचक गया था. सामने का शीशा चूर-चूर होकर चारों तरफ छितरा गया था. मेटाडोर को धक्का मारनेवाली धर्मतला की बस दूसरी ओर खाल पुल के फुटपाथ पर चढ़कर थोड़ी टेढ़ी हो गयी थी. आसपास से सैकड़ों लोगों की भीड़ वहां जमा हो गयी. कई युवक मेटाडोर के पायदान पर चढ़कर अंदर झांक रहे थे. बस के कुछ यात्री उतर कर रास्ते के किनारे खड़े हो गये थे. माहौल में लोगों का शोर बढ़ता जा रहा था, भीड़ बढ़ती जा रही थी. रास्ते में दोनों ओर से आनेवाली गाड़ियों को पीछे ही रोक दिया जा रहा था.

// विजय शंकर विकुज //

मैं बालकनी से हटा और सीढ़ियों से नीचे आ गेट खोलकर बाहर आया. मेरी हिम्मत नहीं हो रही थी कि दुर्घटनावाली जगह पर सामने जाऊं. मेरे घर के सामने, मेरी आंखों के सामने इतना भयंकर एक्सीडेंट मैंने पहले कभी देखा नहीं था. नीचे आने के बाद भीड़ के कारण कुछ समझ में नहीं आ रहा था. मैं अपने गेट के सामने से ही उचक-उचककर देखने लगा.

''काकू-काकू, बहुत ख़तरनाक एक्सीडेंट हो गया है. हम लोग फंसे हुए लोगों को निकालने में लगे हैं. आप जरा पुलिस को फ़ोन कर दें.'' अचानक मेरे पास मेरी नौकरानी मालती का बीस-बाइस वर्षीय लड़का आकर बोला,''मैं जा रहा हूं. आप ज़रा पुलिस को....''

''हां-हां, तुम जाओ,'' मेरी बुद्धि तुरंत सचेत हो गयी. वह लड़का भीड़ में आगे घटनास्थल की ओर बढ़ गया. मैं थोड़ा पीछे खिसक आया. सरकारी अधिकारी हूं, अपना दामन बचाकर चलना पड़ता है. क्या ज़रूरत है ख़ुद फ़ोन करने की. कोई न कोई कर ही देगा या हो सकता है कि कर भी चुका हो.

सजगता के विपरीत अंदर की उत्सुकता अलग कुलांचे मार रह थी. सामने की भीड़ के फांक से मैं झांकने की

कोशिश कर रहा था. मेटाडोर का दरवाज़ा बुरी तरह दो-तीन लोग मिलकर खोलने की कोशिश कर रहे थे. दरवाज़ा बुरी तरह पिचक कर फंस गया था. और जब दरवाज़ा नहीं खुला तो वे लोग सामने की ओर चढ़ गये. ड्राइवर के केबिन के सामने का कांच टूटकर कई जगह सुराख हो गया था. लोग कांच हटा रहे थे ताकि उस ओर से ही अंदर फंसे लोगों को बाहर निकाला जा सके. दूर से नज़र आया कि खलासी का सिर फट गया था. वह होशोहवास में था और ख़ून से तरबतर सामने की ओर से निकलने की कोशिश कर रहा था. दो युवक उसे सहारा देकर निकालने की कोशिश कर रहे थे.

जब खलासी बाहर आ गया तो नीचे खड़े युवकों ने उसे सहारे से थाम लिया. दूसरी ओर ऊपर चढ़े युवक अब ड्राइवर को निकालने का प्रयास कर रहे थे. वह स्टेयरिंग के साथ फंसा हुआ था और बेहोश था. मुझे लगा, उसे और भी गहरी चोट आयी है मगर वह बच जायेगा.

मैंने बस की ओर नज़रें घुमायीं. बस पूरी तरह से खाली थी. उसके सामने का हिस्सा एक्सीडेंट में थोड़ा टूट-फूट गया था मगर किसी जान-माल के नुकसान की आशंका नज़र नहीं आयी. वहीं खड़े कुछ लोग चिल्ला रहे थे, ''बस के ड्राइवर और कंडक्टर स्साले भाग गये. बस के ड्राइवर के कारण ही एक्सीडेंट हुआ है.''

भीड़ और बढ़ गयी थी. कुछ लोग मेटाडोर को थोड़ा पीछे धकेल कर उसके पिछले चक्के के नीचे आये किसी व्यक्ति को निकालने की कोशिश कर रहे थे. चक्के के नीचे आनेवाला भी पूरी तरह ख़ून से तरबतर और बेहोश था. उसके सिर, चेहरा, छाती का आधा हिस्सा बुरी तरह कुचल गया था. पता नहीं बेचारा कौन होगा! उसके घर के लोगों को थोड़े ही पता होगा कि जिनके लिए वह रोटी की जुगाड़ में निकला है, आज कहीं दुर्घटनाग्रस्त हो गया होगा.

अक्सर दुर्घटना के बारे में सुनते ही मेरा रोम-रोम सिहर उठता है. क्यों घटती हैं दुर्घटनाएं! एक्सीडेंट तो बड़ा भयंकर हुआ है. भगवान करे सभी बच जायें. गाड़ियों का नुकसान हुआ है तो हो जाये. सुबह सात-साढ़े सात बजे ही इस तरह की दुर्घटना... अभी भी

विजय शंकर विकुज

**१२ सितंबर १९५७**

**प्रकाशन** : मूल रूप से कहानीकार. देश की अनेक स्तरीय पत्रिकाओं में पिछले बीस वर्षों से कहानियां प्रकाशित.

**विशेष** : कहानी के अतिरिक्त कविता, ग़ज़ल, पुस्तक समीक्षा, रिपोर्ताज, संस्मरण इत्यादि लेखन. आकाशवाणी कोलकाता से समय-समय पर कहानियों का प्रसारण.

**पुरस्कार** : 'वर्तमान साहित्य' द्वारा आयोजित १९९१ में कृष्ण प्रताप कहानी प्रतियोगिता में एक कहानी 'नक्शा' पुरस्कृत.

**संपादन** : रानीगंज से प्रकाशित 'कोयलांचल परिक्रमा' का संपादन, प्रभाकर श्रोत्रिय कालीन 'वागर्थ' में संपादन सहयोग, वर्तमान में 'छपते-छपते' में साहित्य संपादक.

---

बहुत से लोग अपने घरों में बिस्तर पर नींद में गाफिल पड़े होंगे. मैं ही तो सात बजे सोकर उठता हूं. आज भी उठकर बाथरूम गया था कि एक्सीडेंट की आवाज़ ने नींद की खुमारी गायब कर दी. यह शहर किसी के लिए सुबह-सुबह जग जाता है तो किसी के लिए शाम को, किसी के लिए बेवक़्त!

मैं इसी तरह की बातें सोच रहा था कि एक ओर से कई जाने-पहचाने चेहरे वहां आ खड़े हुए. उनमें से एक ने मेरी ओर निहारते हुए कहा, ''अरे गोपाल बाबू! भाई, बड़ा भयंकर एक्सीडेंट हुआ है. जब तक इस खाल पुल को ठीक से बनाया नहीं जायेगा, यहां एक्सीडेंट होते रहेंगे.

मैने हां में सिर हिलाया था कि दूसरे ने कहना शुरू



वक़्त

किया, ''अरे यह खाल पुल कब धंस जाये. कहा नहीं आ सकता. अंग्रेज़ों के ज़माने का है. ढंग से नयी योजनाएं बनानेवाले आज कहां हैं? दो से चार लेन का रास्ता बना दिया गया मगर पुल वही दो लेन का ही है. जब यह पुल बनाया गया होगा, लगता है तब से इसके लिए फिर कुछ सोचा नहीं गया जब कि आबादी आज दस गुना ज़्यादा बढ़ गयी है. और ऊपर से कोलकाता के बसवाले तो किसी की जान की परवाह नहीं करते. बस, इन्हें होड़ में आगे निकलना और पैसा कमाना ही सूझता है.''

''अरे भाई, बीमा कराया होगा. चिंता किस बात की है,'' पहला व्यक्ति जैसे अपना आक्रोश व्यक्त करता हुआ बोला,''मेटाडोर के नीचे आनेवाले व्यक्ति की हालत बचने लायक नहीं है. मेटाडोर का ड्राइवर भी... पता नहीं कहां के होंगे बेचारे, आधा घंटे, से ऊपर हो गया. पुलिस को सूचना मिल गयी होगी.''

''यह एक्सीडेंट हुआ कैसे?'' मेरे मुंह से अनायास निकल पड़ा.

''लो,'' तीसरा व्यक्ति विद्रूपता से मुस्काया. ''एक्सीडेंट तो आपके घर के सामने हुआ है. क्या आप सो रहे थे?''

मैं सिटपिटा गया कि पहले व्यक्ति ने गंभीरता से उसकी बातों को नज़रअंदाज़ करते हुए कहा,''अरे मोल्लारगेट से सतहत्तर-ए की दो बसें एक साथ खुलीं और दोनों में होड़ शुरू हो गयी. पीछे की बस ने साइड काटकर आगे निकलना चाहा कि सामने से आ रही मेटाडोर से जा टकरायी. खाल पुल पर एक व्यक्ति साइकिल से आ रहा था. बस के ज़ोरदार धक्के से मेटाडोर तिरछा घूम गया और उसी झटके से साइकिल सवार उसके पिछले चक्के के नीचे आ गया. मैं यहीं सामने की गुमटी के पास खड़ा चाय पी रहा था. मैंने अपनी आंखों के सामने सब कुछ देखा है.''

हवा में पुलिस की गाड़ी का सायरन गूंज उठा. सभी की नज़रें अपने आप उधर ही उठ गयीं. पुलिस की गाड़ी के पीछे ही एक सरकारी अस्पताल की एंबुलैंस भी वहां पहुंच कर रुक गयी थी. पुलिस वाले धड़ाधड़ उतरे और लाठियां भांजकर लोगों को वहां से खदेड़ने लगे. अस्पताल वाले घायल लोगों को संभालने में लग गये थे. भीड़ से कुछ लोग गालियां बकने लगे थे, चिल्लाने लगे थे, ''स्साले अब आये हैं. बस वालों को तो टाइट नहीं करते और अब नाटक दिखाने आ पहुंचे.''

पुलिस के एक ऑफ़ीसर के साथ एक स्थानीय नेता का तर्क शुरू हो गया था. भीड़ में से कुछ लोग नेता के समर्थन में पुलिसवालों से उलझने को आतुर नज़र आने लगे थे. उत्तेजित लोगों के हावभाव देखकर पुलिस अधिकारी विनम्रता से उन्हें समझाने की कोशिश करने लगा. मुझे लगा, परिस्थिति विस्फोटक रूप धारण कर सकती है. मुझे यहां से हट जाना चाहिए.

मैं धीरे से गेट खोलकर भीतर आ गया. भीतर से गेट को लॉककर ऊपर ड्राइंगरूम में पहुंच सोफ़े पर बैठ गया. मुझे वहां देख लीना भी आकर सोफ़े पर मेरी बगल में बैठ गयी और उसने प्रश्नवाचक चेहरे से मेरी ओर देखा,''क्या वहां पुलिसवालों से लड़ाई-झगड़ा हो रहा है?''

''हवा गर्म है. मैं तो चला आया. यह कोलकाता है. पता नहीं कब क्या हो जाये लेकिन थोड़ी देर बाद सब कुछ फिर पहले जैसा हो जायेगा. यहां किसको फ़ुर्सत है ऐसी घटनाओं के बारे में कुछ सोचे.'' मैंने कुछ सोचते हुए अपना सिर झुका लिया.

मेरी बात पर लीना ने कोई उत्तर नहीं दिया. मेरे कान बाहर की परिस्थिति को अनकने का प्रयास कर रहे थे. संवेदना भरी चुप्पी में कई मिनट गुज़र गये. मुझे लगा, बाहर शोरगुल कुछ कम होने लगा है. मन अपने आप थोड़ी राहत महसूस करने लगा.

मैंने दीवार घड़ी की ओर नज़रें उठायीं. नौ बज गये थे. आज रविवार है. कल रात ही मैं तथा लीना ने आज की शाम विक्टोरिया घूमने का प्रोग्राम बनाया था. सुबह उठने के बाद नाश्ता करके मैं बाज़ार के लिए निकलने वाला था कि आज भोजन में मटन या हिलसा का स्पेशल आइटम रहेगा. और सुबह-सुबह घर से दस-पंद्रह मीटर की दूरी पर यह दुर्घटना घट गयी. सुबह की ऐसी शुरुआत ने मन-मिजाज थोड़ा ख़राब कर दिया था. मैंने सोचा, अब थोड़ी देर बाद बाज़ार के लिए निकलूंगा.

''दादा, अस्पताल वाले घायलों को लेकर चले गये? भगवान करे सब की जान बच जाये'', कमरे में आती हुई मालती ने हम दोनों को निहारकर कहा,''गाड़ी हटानेवाली क्रेन आ गयी है. एक तरफ से गाड़ियों का

आना-जाना शुरू हो गया है. रास्ते में दोनों तरफ गाड़ियों का जाम लग गया था.''

''चलो, झमेला जल्दी निपट जाये, अच्छा है. सुबह-सुबह ऐसी अनहोनी घर के सामने घट गयी, मूड खराब हो गया, ''मैंने धीरे से कहा.

''भगवान की दया से सभी की जान बच जाये,'' उसने हाथ जोड़ कर जैसे किसी अदृस्य शक्ति को कहा.

''अच्छा ठीक है. जो होना था सो हो गया. अब जाकर बाथरूम में रखे कपड़ों को धो दे,'' लीना ने उसे टोकते हुए गंभीरता से कहा.

''हां, भाभी, अभी जाती हूं,'' और वह बाथरूम की ओर बढ़ गयी.

''आप जब नीचे गये थे, उसी समय स्वीटी का फ़ोन आया था. कह रही थी, शांति निकेतन में कई दिनों की छुट्टी है. शाम तक कोलकाता आ जाऊंगी,'' लीना ने मेरी पीठ पर उंगली फेरते हुए कहा.

''अच्छा!'' मेरा मन खिल उठा,''तब तो बाज़ार के लिए ज़रूर निकलना होगा. मिठाई वग़ैरह भी लाकर रख देना होगा. कई दिनों तक रहेगी तो?''

''हां, कह तो रही थी,'' लीना ने झट उत्तर दिया.

''ऐसा करो, ज़रा चाय बनाओ. एक्सीडेंट ने मूड ख़राब कर दिया. चाय पीकर बाज़ार के लिए निकलूंगा. स्वीटी शाम तक आ जायेगी, मोहन भी दो-एक दिनों में आनेवाला है.''

''आपको कैसे पता चला? क्या मोहन ने फ़ोन किया था?'' लीना ने मुझे गहरी नज़रों से निहारते हुए पूछा.

''हां, कल दफ़्तर में उसका फ़ोन आया था. कह रहा था, अब उसका काम थोड़ा चलने लगा है. कुछ पैसे वापस करने आयेगा,'' मैंने कहा.

''अच्छा!'' लीना के स्वर में आश्चर्य घुला हुआ था,''काम चल निकला है तो अच्छी बात है. अब उसे अपने काम में और मन लगाना चाहिए. कब तक इधर-उधर भटकता फिरेगा. भगवान करे वह अपने पैरों पर खड़ा हो जाये. तीन-चार सालों में अब तक वह पंद्रह-बीस हज़ार रुपये ले गया होगा?''

''मदद तो करनी पड़ेगी. मन लगाकर कोई काम करता तो अब तक कुछ बना लेता, मैं भावनात्मक रूप से संवेदनशील होता हुआ बोला.

बाहर शोरगुल ख़त्म हो गया था. मैं उठकर बालकनी में चला आया. पुलिसवाले ट्रैफिक को संभालने में लग गये थे. कुछ लोग अभी भी दूर खड़े एक्सीडेंट को लेकर आपस में बातें कर रहे थे. कई स्थानीय युवक पुलिस की मदद में जुटे हुए थे. बस को चालीस फुट लंबे पुल से खींचकर दूसरी ओर ले जाया गया था. गाड़ियों का आवागमन शुरू हो गया था.

मैं भीतर कमरे में आ गया. सोफ़े पर बैठते हुए सेंटर टेबिल पर रखे अख़बार को उठा लिया. कई ख़बरों की हेडलाइन पर नज़रें दौड़ाते हुए मेरे अंदर एक व्यग्रता जाग उठी. इस दुर्घटना की ख़बर तो इसमें है ही नहीं. पढ़ने से पता चलता कि आख़िर एक्सीडेंट हुआ कैसे था. कितने लोगों को चोट आयी थी? और सोचते-सोचते ही अपने ऊपर हंसी भी आ गयी. अरे धत्त! यह तो आज का ही अख़बार है और दुर्घटना तो दो-ढाई घंटे पहले घटी है. अब टीवी चैनलवाले अपने 'एक्सक्लूसिव' या ताज़ा समाचार में इसे भले ही दिखा दें मगर इसकी खब़र आज के किसी 'इवनिंग' या कल के अख़बार में ही आयेगी. मैं भी कितना अहमक हूं.

मैंने अख़बार को टेबिल पर रख दिया. मन में स्वीटी के आने की ख़ुशी हिलोरें मारने लगी थी. मेरी बेटी लगभग डेढ़ महीने बाद घर आ रही है. कई दिनों तक रहेगी. वह जब भी आती है, घर का सूनापन ख़त्म हो जाता है. शांति निकेतन वापस चली जाती है तो घर हम मियां-बीवी को काटने दौड़ता है. कभी कभी सोचता हूं, ब्याह होकर ससुराल चली जायेगी तो हम दोनों पर पता नहीं क्या गुज़रे. कभी सोचता हूं, घर जवाई खोजूंगा मगर अभी वह अपनी पढ़ाई पूरी करे. दो-तीन महीनों बाद उसकी एम.ए. की परीक्षा है.

स्वीटी के बारे में सोचते-सोचते मोहन का चेहरा भी आंखों के सामने झलक उठा. मोहन मुझसे सात-आठ साल छोटा है. अब तो उसकी उम्र भी लगभग पैंतालिस साल हो गयी है. पढ़ाई-लिखाई में मन नहीं लगाया जिसका मलाल मेरे पिता और मां को हमेशा ही रहा. आज मां और पिताजी इस दुनिया में नहीं हैं. वे रहते तो उन्हें कितना दुख होता कि मोहन आज एक टीवी रिपेयरिंग का मिस्त्री है. अच्छा कारीगर है मगर काम ठीक से नहीं करता. जब भी आता है, हज़ार-पांच सौ मांगकर ले जाता है. मैं कई बार उसे समझाकर हार गया कि उसकी भी उम्र होती जा रही है, अब तो अपने

पैरों पर खड़ा हो. कब तक भटकता रहेगा?

कई जगह मेरी जान-पहचान है जहां मैंने उसकी नौकरी लगवायी मगर दो-चार महीना होते न होते उसने नौकरी छोड़ दी. उसकी पत्नी आसपास कई घरों में बच्चों को ट्यूशन पढ़ाकर किसी तरह घर का ख़र्च चलाती है. मोहन का एक आठ साल का लड़का भी है.

कोलकाता में मोहन मेरे घर से बारह-तेरह किलोमीटर की दूरी पर ढाकुरिया में रहता है. तीन-चार महीने में अक्सर मेरे घर दो-एक दिनों के लिए सपरिवार आता रहता है. छोटा भाई है तो आयेगा ही मगर जब भी आता है, अपनी बेरोज़गारी का रोना रोकर पांच-सात सौ रुपए मांग बैठता है. उसके निकम्मेपन के साथ उसकी इस आदत से मैं काफ़ी चिढ़ता हूं. अभी चार-पांच महीने पहले आया था तो दस हज़ार रुपए मांगकर ले गया था. कह रहा था कि टीवी रिपेयरिंग की दुकान खोलेगा. दो-तीन महीने पहले उसका फ़ोन आया था कि उसने दुकान खोल ली है, दुकान चलने लगी है. मुझे ख़ुशी हुई थी. मैंने उसे कहा था कि अब मन लगाकर दुकान चलाये. उसका एक बेटा है जिसका भविष्य वह अपने जैसा न गढ़े. उसने कहा था कि वह अब कुछ कर के दिखायेगा.

और अभी कल ही उसका फ़ोन आया था कि वह दो-एक दिनों में मेरे यहां आनेवाला है. अच्छी बात है, आये, कभी मना तो नहीं किया. उसने बताया था कि वह अपनी दुकान और बढ़ाने के बारे में सोच रहा है. आयेगा तो मेरे कुछ रुपये वापस भी कर देगा. मैंने उसे कहा था कि मेरे रुपये वापस करने की जल्दी नहीं है. बस, वह अपने पैरों पर खड़ा हो जाये तो मुझे बड़ी ख़ुशी होगी. फिर भी मेरे अंदर उसके स्वभाव को लेकर एक आशंका उभरी, क्या वह सचमुच मेरे रुपये देने आ रहा है या किसी बहाने पुनः कुछ ऐंठने! भगवान जाने!

सोचते-सोचते मेरी नज़र सामने दीवार घड़ी पर पड़ी. ग्यारह बजने में पांच मिनट बाकी थे. मेरे कान बाहर की हवा को अनकने की कोशिश करने लगे. गाड़ियों की आवाजाही की आवाज़ से लगा कि बाहर सब कुछ अपने ढर्रे पर आ गया है. अब बाज़ार के लिए निकला जा सता है.

मैं उठकर फटाफट कपड़े बदलने लगा. रसोईघर से लीना ने देख लिया था. वह बैग लेकर मेरे पास आ

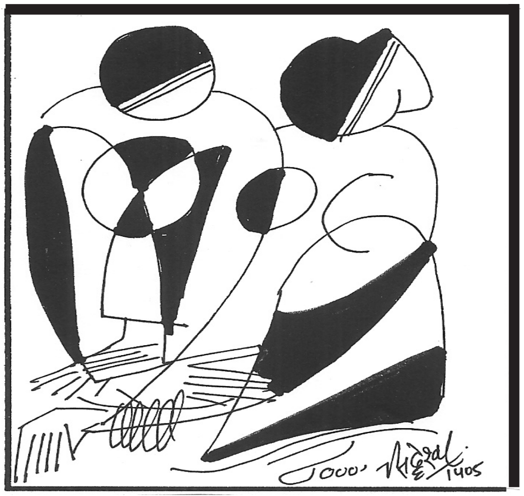

खड़ी हुई. मैंने बैग उसके हाथ से लेते हुए पूछा,''क्या-क्या लाना होगा?''

''मटन, हिलसा, मिठाइयां और जो ठीक लगे.''

''ठीक है,'' और मैं दरवाज़े की ओर बढ़ा कि मेरी जेब में रखा मोबाइल का फ़िल्मी रिंग टोन तरंगित हो उठा.

मैंने तुरंत मोबाइल निकालकर देखा. पता नहीं किसका नंबर है. मैंने उसे ऑन कर दिया, ''हैलो!''

''क्या यह मिस्टर गोपाल का नंबर है?'' दूसरी ओर से गंभीरता से पूछा गया.

''जी हां, मैं गोपाल ही हूं. कहिए साहब, आप कौन बोल रहे हैं? क्या बात है?'' मैंने भी गंभीरता के साथ उत्तर दिया.

''... पुलिस, आज सुबह मोल्लारगेट में खाल पुल के पास एक एक्सीडेंट की घटना घटी थी. उस एक्सीडेंट में दो लोगों की मौत हो गयी. इन दो मृतकों में एक सायकिल सवार जो मेटाडोर के नीचे आ गया था, उसकी जेब से कुछ काग़ज़ात मिले हैं जिसमें सबसे ऊपर यही नंबर और आपका नाम लिखा था. मृतक की जेब से कई हज़ार रुपये भी मिले हैं. काग़ज़ातों से लगता है कि मृतक का नाम मोहन....''

इसके बाद के शब्द मेरे कानों में एक्सीडेट की आवाज़ में गूंज उठे. धड़ाम! धड़ाम!! धड़ाम!!!

**द्वारा छपते छपते दैनिक,**
**२६-सी, क्रीक रो, कोलकाता-७०००१४**
**फ़ो.-९२३९०३२१२०**

कहानी

# मुखबिर

दोहरी चाल चल रहे गंगाराम गड़रिया को पूरी रात ठीक से नींद नहीं आयी. वह करवटें बदलता रहा. वह बार-बार सूख-सूख जाते गले को लोटा भर पानी गढ़ककर तर करने का उपक्रम करता रहा. पर बार-बार मुताश आ जाने से उसे मोरी पर जाकर मूतना पड़ता और उसे फिर से शरीर में जल अभाव का अनुभव होने लगता. इस बार-बार की हलचल से उसकी घरवाली की भी शायद नींद उचट गयी. वह कुनमुनायी, ''मुनिया के बापू तुम अब डकैतों से रिश्ता ख़तम कर यह मुखबिरी का काम छोड़ो. जा काम में दोई तरफ से जान पर आफ़त बनी रहती है. इतै.... डकैत दयाराम, रामबाबू की दबिश..., तो उतै पुलिस की.... जा में ऐसी ख़ास आमदनी भी नहीं कि मोड़ा-मोड़ी ठीक से पल जायें.''

''मुनिया की अम्मा तेरी बात मेरे दिमाग़ में बैठत तो है, पर मोये ऐसो भान होत है कि गिरोह को जब सफ़ाया होये, तबहीं जाके मुक्ति मिलै. ला रसद की गठरी लाके मोये दे और किबाड़ खोल, भुनसारो होवे से पेलेई गांव की सीमा पार कर जंगल की डगर पकडूं.''

गंगाराम की घरवाली ने बिछौना छोड़ा. चौके में जाकर उसने बच्चों के सो जाने के बाद डकैतों के लिए रात में ही देशी घी में बनाकर रखी पूड़ी-सब्जी की गठरी उठायी और द्वार पर आ गयी. उसने बेंढ़ा और सांकल खोल एक किवाड़ इतने धीरे से खोला कि आस-पड़ोस के किसी के कान में कोई ऐरो सुनायी न दे जाये.

गंगाराम ने किवाड़ों के बीच से गर्दन निकालकर घुप्प अंधेरे में झांका तो उसके शरीर में एक सिहरन सी दौड़ गयी. चारों ओर व्याप्त सन्नाटा उसे बेहद भयावह सा लगा. दरवाज़ा पार कर गलियारे में जब वह आया तो उसे लगा जैसे वह मौत की अंधी सुरंग में प्रवेश कर रहा है. उसने पत्नी के हाथ से पोटली लेते हुए उसका हाथ कसकर पकड़ लिया, जैसे इंगित कर रहा हो कि यदि मैं जीवित न लौटूं तो मेरे बच्चों का भविष्य तेरे ही हाथों में है. और फिर वह दबे पांव चल दिया. वह जानता है कि मुनिया की अम्मा को इस क्षण अनायास ही किसी अज्ञात गर्भ को फोड़ उठे बवंडर से उपजी शंका-कुशंकाओं ने जकड़ लिया होगा. लेकिन वह कब लाचार मुनिया की अम्मा के कहे को तवज्जो देता है. वह तो शुरू से ही डकैतों की मुखबिरी करने की खिलाफत करती रही है. वही है जो समाज में अपना रौब-रुतबा बनाये रखने के लिए खूंखार गिरोह से मिला रहकर अपनी जान को हथेली पर रखे फिरता है. इस मदद के बदले में उसे कुछ धन ज़रूर हासिल हो जाता है. पर वह यह भी जानता है कि यदि दयाराम-रामबाबू को नेकई संदेह हो गया कि वह पुलिस से भी मिलकर दोहरी चाल चल रहा है तो दूसरे मुखबिरों की तरह उसकी सड़ी-गली लाश वीरान जंगल के किसी गड्ढे में मिलेगी.

## ॥ प्रमोद भार्गव ॥

लंबे-लंबे डगों से कोस नापता हुआ गंगाराम पहली ही बरसात में हरिया चुके खोड़न के जंगल की परिधि में पहुंच गया था. गर्मी को राहत देने वाली सुबह की ठंडी हवा की पुरवाई चलने के बावजूद गंगाराम की रूह कांप रही है. उसे अनुभव हो रहा है जैसे सावन-भादों का महीना न होकर अगहन माघ की हड्डियों के जोड़ कप-कपा देनेवाली ठंड हो. वह फिर सोच में पड़ गया कि उसने भी कहां, यह बेवजह मुखबिर बन जाने की जोख़िम उठा ली. एक तरफ गिरो तो कुआं और दूसरी तरफ गिरो तो खाई. पुलिस और डकैत ! इन दो पाटन के बीच पिसते-पिसते मुंए पूरे छह साल गुज़र गये, पर चैन कहां? बीते दो साल पहले जर-ज़मीन और बंदूक के लालच में वह पुलिस का भी मुखबिर बन बैठा. इन दो सालों में उसने दो मर्तबा पुलिस को दयाराम-रामबाबू गड़रिया गिरोह की उपस्थिति की पिनपॉइन्ट ख़बर भी पुलिस को दी, पर पुलिस कहां गिरोह का बाल भी

बांका कर पायी? हर बार नया बहाना गढ़कर पुलिस ने सीधी मुठभेड़ टाल दी. इस बार उसने भी पक्का मन बना लिया है कि अब की बार पुलिस ने मुठभेड़ टाली तो वह फिर पुलिस के लिए मुखबिरी कभी नहीं करेगा. दरोगा आलोक भदौरिया से बेहिचक कह देगा, 'कोई और मुखबिर ढूंढो साहब और हमारे प्राण बख्शो!' मुखबिरी के दौरान जान हलक पर आ अटक जाती है, सांस फूल जाती है और जुबान से बोल तक नहीं फूटते. गड़रिया को कहीं जरा भी भनक लग गयी कि गंगाराम कहीं दाल में कुछ काला कर रहा है तो उसकी इहलीला ख़त्म! अब तक कितने ही मुखबिरों का काम तमाम कर चुके हैं दयाराम-रामबाबू बंधू.

□

सूरज देवता प्रगट हो गये थे. जंगली पेड़ों की डाल-पत्तों से टकराकर सूर्य-किरणें आंख मिचौनी खेल रही थीं, पक्षियों की चह-चहाहट भी शुरू हो गयी थी. दूर दराज़ से बरसाती झोरों के बहने की स्वर लहरियां भी वातावरण में गुंजायमान थीं. प्रकृति के इस मधुर परिवेश में गंगाराम को जंगल एक ठहरा हुआ सन्नाटा अनुभव हो रहा था. सर्प चाल सी लहराई पगडंडी पर गंगाराम लंबे-लंबे डग भर रहा था. उसे जब हलक सूखा सा जान पड़ता तो वह छैले के पत्ते तोड़कर चबाते हुए आगे बढ़ता रहता. उसे जौराई टीले के नीचे बहनेवाले झोरे के पास पीपल के पेड़ तक शीघ्र पहुंचना था. यहीं से दयाराम-बाबूराम गड़रिया गिरोह के गुज़रने की ख़बर उसके पास गिरोह द्वारा पहुंचायी गयी थी. उसे हुक्म था कि वह भोजन लेकर झोरे पर हाज़िर हो.

समय करीब आ रहा था. कई मर्तबा वह इस दुर्गम सफर पर निकला है, पर वक्त की पाबंदी की शर्त से बंधा होने के कारण उसे आज का सफर बेहद लंबा महसूस हो रहा था. उसे एक तरफ तो गिरोह को रसद पहुंचानी थी, दूसरे पुलिस को सीधी मुठभेड़ के लिए उसने ख़बर दे दी थी. पुलिस ने अब तक चुपचाप मोर्चा संभाल लिया होगा, ऐसी पिन पॉइन्ट ख़बर बमुश्किल ही मिलती है. ख़बर देते वक्त भदौरिया दरोगा ने उसकी पीठ थपथपाते हुए उसके हाथ पर दस हज़ार की गड्डी रख दी थी. उस गड्डी के स्पर्श से उसके सारे शरीर में अनायास ही गर्माहट पैदा हो गयी थी. इसके पहले गंगाराम की हौसला अफजाही के लिए भदौरिया दरोगा

**१५ अगस्त १९५६,**
**अटलपुर, जि-शिवपुरी (म.प्र.)**

**शिक्षा** : स्नातकोत्तर (हिंदी साहित्य)

**प्रकाशन** : प्यास भर पानी (उपन्यास), पहचाने हुए अजनबी, शपथ-पत्र एवं लौटते हुए (कहानी संग्रह); शहीद बालक (बाल उपन्यास); सोनचिरैयाइन, सफेद शेर, चीता, संगाई, शर्मीला भालू, जंगल के विचित्र जीव जंतु (वन्य जीवन); घट रहा है पानी (जल समस्या) इन पुस्तकों के अलावा देश की पत्र पत्रिकाओं में अनेक लेख एवं कहानियां प्रकाशित. साथ ही 'स्त्रोत', 'सप्रेस', 'हिंदुस्तान फीचर' आदि फीचर एजेंसियों से अनेक लेख जारी.

**सम्मान** : म.प्र. लेखक संघ, भोपाल द्वारा वर्ष २००८ का बाल साहित्य के क्षेत्र में चंद्रप्रकाश जायसवाल सम्मान; ग्वालियर साहित्य अकादमी द्वारा साहित्य एवं पत्रकारिता के लिए डॉ. धर्मवीर भारती सम्मान; भवभूति शोध संस्थान डबरा (ग्वालियर) द्वारा 'भवभूति अलंकरण'; म.प्र. स्वतंत्रता सेनानी उत्तराधिकारी संगठन भोपाल द्वारा 'सेवा सिंधु सम्मान'; म.प्र. हिंदी साहित्य सम्मेलन, इकाई-कोलारस (शिवपुरी) साहित्य एवं पत्रकारिता के क्षेत्र में दीर्घकालिक सेवाओं के लिए सम्मानित.

**अनुभव** : 'जनसत्ता' की शुरुआत से २००३ तक शिवपुरी जिला संवाददाता, 'नई दुनिया' ग्वालियर में १ वर्ष ब्यूरो प्रमुख शिवपुरी, 'उत्तर साक्षरता अभियान' में दो वर्ष निदेशक के पद पर.

**संप्रति** : जिला संवाददाता आज तक (टी.वी. समाचार चैनल), संपादक- 'शब्दिता संवाद सेवा, शिवपुरी.

ने उसे मढ़ीखेड़ा बांध के रेस्ट हाउस में पुलिस कप्तान से भी मिलवाया था, तब कप्तान साहब ने उसे हिदायत दी थी कि मुठभेड़ स्थल ऐसा चुनना जो पुलिस के लिए पूरी तरह सुरक्षित मुफ़ीद हो और गिरोह को पुलिस होने की भनक तक न लगे. कप्तान साहब ने इसी वक़्त पुलिस को यह भी सख़्त हिदायत दी थी कि गिरोह के गुज़रने के दौरान पहली गोली कप्तान साहब ही चलायेंगे इसके पहले मोर्चे पर तैनात कोई भी सिपाही गोली नहीं दागेगा. गैंग भले ही गुज़र जाये. गंगाराम को तो बस ऊंची जगह पर खड़े होकर गिरोह द्वारा झोरा पार करते समय बीड़ी सुलगाकर मोर्चे पर तैनात पुलिस बल को इशारा भर देना था कि गिरोह गुज़र रहा है. बस फिर क्या था पुलिस की बंदूकें आग उगलेंगी और दयाराम-रामबाबू का राम-नाम सत्य!

लंबे कदम नापता हुआ गंगाराम निर्धारित स्थल पर पहुंच ही गया. उसने पूरे जतन से सहेज कर लायी रसद की पोटली झोरे के किनारे एक समतल चट्टान पर रख दी. फिर वह पीपल के नीचे आकर खड़ा हो गया, उसके लिए यह जगह कोई नयी नहीं थी, खोड़न से लेकर डोंगरी झोंपड़ी बम्हारी और रीछ-खो के जंगल का चप्पा-चप्पा उसका देखा परखा था. वह यह देखकर आश्वस्त हो गया कि पुलिस ने उसके आने के पहले ही दो तरफ से मोर्चा संभाल लिया है. उसने कंधे पर टंगी स्वाफी से मुंह पर छलछला आये पसीने को पौंछते हुए सोचा, 'ईश्वर की कृपा हुई तो आज गड़रिया गिरोह का सफ़ाया तय है. व्यूह रचना तो कुछ ऐसी ही रची जा चुकी है कि सांप भी मर जाये और लाठी भी न टूटे. बस गैंग दिये वचन अनुसार इस मौके से गुज़र भर जाये.'

दम साधे गंगाराम पीपल के सहारे खड़ा है. भय संशय और बेचैनी उसे भीतर ही भीतर इस आशंका से खाये जा रही है कि कहीं ऐन वक़्त पर कोई गड़बड़ी न हो जाये? कहीं उसी के जान के लाले न पड़ जायें? एक बार तो उसे लगा कि उसकी ऊर्जा कहीं शरीर में ही वाष्पीकृत होकर रोम-रोम से निकलती जा रही है, और वह जैसे गश खाकर गिरने ही वाला है. कुछ पलों के लिए उसने पीपल के तने का सहारा लेकर ख़ुद को भगवान भरोसे निढाल-सा छोड़ दिया, और गहरी सांस लेकर आह भरी, 'हे रामजी अब एक तेरा ही आसरा

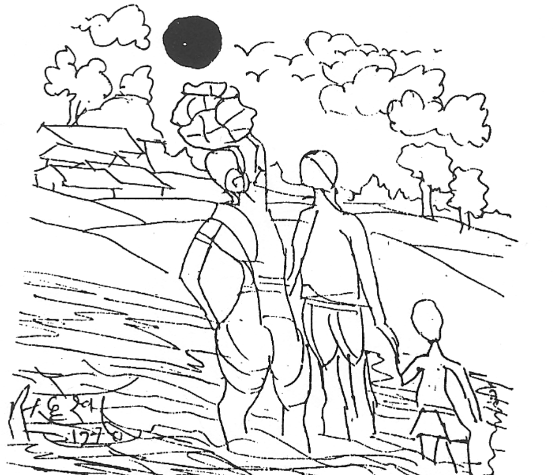

है...'

गंगाराम ने निस्तब्ध वातावरण में साहस जुटाया. दूसरे क्षण उसे लगा कि जैसे कुछ समय के लिए लकवाग्रस्त हो गये उसके शरीर में प्राणवायु संचारित हो रही हो .... उसने पेड़ का सहारा छोड़ा. कुर्ते की जेब से बंडल माचिस निकाले और बीड़ी सुलगाने के लिए जैसे ही तत्पर हुआ कि उसकी चेतना ने स्मृति लौटायी, 'बीड़ी तो गैंग के सामने से गुज़रने पर ही सुलगानी है.' उसे भयमुक्त होने की अनुभूति हुई और उसने बीड़ी पीने का मनसूबा फिलहाल टाल दिया.

गंगाराम ने अपनी समस्त इंद्रियां सतर्क करने की कोशिश की. बियावान जंगल में झाड़-झंखाड़ों के खड़कने के साथ दांयी ओर से पग ध्वनियों की आहट सुनायी दी. गैंग के आगमन का संकेत भी इसी दिशा से था. चौकन्ना होकर गंगाराम ने आहट की ओर दृष्टि उठायी. पहले वीरा धोबी....फिर सिरनाम आदिवासी... फिर गिरोह का मुखिया, शातिर दिमाग़, मास्टर माइंड... पांच लाख का इनामी सरगना दयाराम और फिर दयाराम का मां जाया छोटा भाई रामबाबू गड़रिया... और फिर गिरोह के अन्य सदस्य डकैत.

गंगाराम ने पीपल के नीचे खड़े रहते हुए ही हाथ जोड़कर डकैतों का अभिवादन किया और फिर हिम्मत जुटाकर अपने कर्तव्य के पालन हेतु बीड़ी सुलगाने के लिए तीली माचिस के रोगन से रगड़ी... फुर्र सी हुई और तीली बुझ गयी. एकाएक उसकी देह थराथरा उठी.

उसने भरपूर संयम व विवेक की चेतना से मन-मस्तिष्क पर जोर डालकर अनायास ही थरथरा उठी देह को नियंत्रित करने की पुरज़ोर कोशिश करते हुए फिर से नयी तीली को रोगन पर रगड़ा.... चिंगारी लौ में तब्दील हुई. तुरंत उसने हवा के प्रवाह से लौ को बचाने के लिए तीली हथेलियों की ओट में ले ली और फिर बमुश्किल बीड़ी सुलगाने में कामयाब हुआ.

वीरा धोबी रसद की पोटली उठाकर झोरा पार कर गया था और फिर एक-एक कर सब झोरा पार कर करधही के जंगली पेड़ों से आच्छादित पहाड़ की सुरक्षित ओट में होते चले गये. गंगाराम बीड़ी के लंबे-लंबे सूटे लेकर धुंआ उड़ेलकर पुलिस को गैंग के गुज़रने का संकेत देता रहा, पर पुलिस की बंदूक की नालों ने धुंआ नहीं उड़ेला. आशंकित गंगाराम किंकर्तव्यविमूढ़! यह क्या इतना सुनहरा अवसर पुलिस ने गंवा दिया....? पुलिस की गोली चलती तो एक-एक कर गिरोह के पूरे सदस्य धाराशायी होकर धरती पर पड़े होते. पर पुलिस ने गोली क्यों नहीं चलायी? क्या पुलिस डकैतों से सीधी मुठभेड़ करने की हिम्मत नहीं जुटा पायी...?

बदहवास गंगाराम उस टीले के पीछे पहुंचा जहां पर पुलिस तैनात थी, पुलिस कप्तान भारी भरकम गोल पत्थर के पीछे ए.के.- ४७ थामे उकडूं बैठे मोर्चा संभाले हुए थे, परंतु उनके चेहरे पर पसीने की उभरी लकीरों के साथ उससे आंखें न मिला पाने की लाचारी स्पष्ट झलक रही थी. उम्र के थपेड़े खाये गंगाराम ने कप्तान साहब के चेहरे पर उभरे भावों को पढ़ा, 'शायद कप्तान साहब का ईमान पहले से ही डोला हुआ था, फिर चाहे वह जान के लालच में डोला हो अथवा पकड़ों को छोड़नेवाली फिरौती की धनराशि के कमीशन में.'

पुलिस और डकैत, दो पाटों के दर्मियान खड़ा गंगाराम सोच रहा था कि सीधी मुठभेड़ को अंजाम नहीं देने के यथार्थ का अर्थ जैसे उसके समक्ष विश्वास की अंधेरी सुरंग फाड़कर उजागर हो रहा है. गंगाराम अनजाने खौफ़ से बेख़्याली के आलम की गिरफ़्त में आने लगा. बेसुधी की हालत में उसे अहसास हुआ कि वह किसी भयंकर अजगर की गुंजलक में जकड़ता जा रहा है.

**शाही निवास, शंकर कॉलोनी,**
**शिवपुरी (म.प्र.) ४७३५५१,**
**मो. ९४२५४८८२२४**

# दो ग़ज़लें

**अनिल पठानकोटी**

समेटा ख़ुद को चादर में हमेशा,
गुज़ारी ज़िंदगी डर में हमेशा.
ठहाके बीच बाज़ारों में गूंजे,
रहीं मायूसियां घर में हमेशा.
मैं शायर हूं मेरा घर-बार भी है,
मगर रहता हूं दफ़्तर में हमेशा.
चलो कुछ फूल उस मज़दूर को दें,
जो गुम रहता है पत्थर में हमेशा.
यही गाते हैं बस गुमनाम बच्चे,
रहे हम ग़म के मंज़र में हमेशा.
सफर मेरा तेरे दर तक मुकम्मल,
नदी गिरती है सागर में हमेशा.
'अनिल' भूचाल हो या जलजला फिर,
ये आ जाता है पलभर में हमेशा.

**(२)**

बोला है सच को ज़ोर से नारे लगाये हैं,
पीछे लगे हुए मेरे गुमनाम साये हैं.
एक-एक कर के यार मेरे सब गुज़र गये,
मैंने अकेले ही सभी के ग़म उठाये हैं.
हाथों में दोस्त, मेरे लकीरों की शक्ल में,
कुदरत की खौफनाक सभी आपदाएं हैं.
शिकवे-गिले करेंगे सभी दूर मिल के हम,
खुद ही ये फासले भी तो हमने बढ़ाये हैं.
मुझको तो हमसफर की ज़रूरत नहीं पड़ी,
नाकामियां शुरू से मेरे दायें-बायें हैं.
मैं किस तरफ मुड़ूं ये मु सूझता नहीं,
'अनिल' बुला रही मुझे चारों दिशायें हैं.

**गार्डन कालोनी समीप रेणुका मंदिर,**
**मिशन रोड, पठानकोट**

कहानी

# कप वाली आइसक्रीम

''पापा, हमें कप वाली आइसक्रीम ख़रीद दीजिए, प्लीज़.''- सत्यम जब कभी गिड़गिड़ाते हुए कहता, तो मेरा मन, गर्मी पाकर गल रही आइसक्रीम की तरह पिघलने लगता ! लेकिन, पैंट की जेब में अंगुलियां पड़ते ही, अभाव की ठंडक, पत्थर की तरह कठोर कर देती और मैं उसकी आंखों के बालपन से अपनी आंखें चुराता हुआ, बहाना कर देता- ''बेटा, आइसक्रीम खाने से टॉन्सिल हो जाता है, खांसी हो जाती है.''

''नहीं पापा, आपने ही कहा था, कल तुम्हें आइसक्रीम दिला दूंगा.''

ठीक है, ठीक है, लेकिन कप वाली आइसक्रीम नहीं. लॉली पॉप! बिल्कुल नारंगी के स्वाद में.'' कहते हुए उसे दो रुपये में बर्फ वाली आइसक्रीम दिला दी थी. आख़िर कब तक उसे झूठी बातों से रिझाता रहता! आख़िर कब तक?

उसके स्कूल में अमीर घराने के बच्चे भी पढ़ते हैं. भाई, संगत तो पड़ेगी ही. अपने दोस्त को कीमती चॉकलेट खाता देख, मुझसे भी वैसी ही चॉकलेट लाने को कहता. कभी पैकेट वाले आलू चिप्स, तो कभी कोका कोला पिलाने को कहता. ईमानदारी की कमाई से इतना कुछ संभव है क्या? उसे देखकर मेरी छोटी बेटी गुड़िया भी जिद्द करने लगती. और मैं किसी न किसी बहाने उसे टाल देता- ''बेटा, अधिक चॉकलेट खाना सेहत के लिए अच्छा नहीं. मैं तुम्हें बढ़िया चॉकलेट लाकर दूंगा. वह मन मारकर चुप हो जाता और मैं कम पैसे वाला घटिया कंपनी का चॉकलेट देता हुआ कहता- ''यह बहुत बढ़िया चॉकलेट है.'' वह न चाहते हुए भी उसे खा लेता, तो मेरे भीतर की आत्मा कराह उठती. क्या सचमुच यह बढ़िया चॉकलेट है. जो मैंने कम पैसे में ख़रीद कर उसे दी है...?

.... लेकिन आज तो हद ही हो गयी. बीच बाज़ार में नंगा हो गया मैं. पत्नी की तबीयत सुबह से ख़राब थी. दवा लाने बाज़ार जाने लगा तो, सत्यम और गुड़िया भी साथ चल पड़े. दवा की दुकान पर खड़ा मैं दवा लेने लगा. दवा लेकर पीछे मुड़ा ही था कि सत्यम को आस-पास न पाकर घबरा गया. गुड़िया एकटक से सामनेवाले 'कोल्ड ड्रिंक कॉर्नर' की दुकान की ओर देख रही थी.

''गुड़िया, सत्यम कहां गया?''

''सोहन अंकल के साथ सामनेवाली दुकान पर खड़ा है पापा!''

मैं दुकान की ओर बढ़ा तो देखा मेरा मित्र सोहन, मेरे बेटे के लिए कप वाली आइसक्रीम ख़रीद रहा है. सोहन को देखा तो मैं भीतर से चिढ़ गया. नौकरी तो मेरे साथ ही करता है, लेकिन ग़रीबों का खून जोंक की तरह चूसता है. टीसी तो मैं भी हूं, किंतु मेरी आत्मा ऐसी ग़लत कमाई के लिए कभी तैयार नहीं होती, जिसके कारण कोई ग़रीब बददुआएं देने लगे.

## ॥ सिद्धेश्वर ॥

एक वह है कि मेरी ईमानदारी को ठेंगा दिखलाता हुआ, रोज़ ग़रीब यात्रियों का दोहन करता है. सही यात्रा-टिकट रहते हुए, ग़लत टिकट बतलाकर, कम पढ़े-लिखे ग़रीब यात्रियों की जेब से पैसे छीन लेता है!... मैंने कितनी बार उसे इस काम से रोकने की कोशिश की, समझाया- ''यार, ग़रीबों का ख़ून मत चूसो. जेब से पैसे ही निकालने हैं तो पैसेवालों की जेबें टटोलो.'' मगर, वह मेरी बातों को टाल देता-''गांधी बाबा जी, यह कलयुग है! सतयुग का पाठ मुझे मत पढ़ाओ! इतनी महंगाई में, ईमानदारी की कमाई से पेट नहीं भरता, न पत्नी ख़ुश रहती है. यहां तक कि बच्चे भी ख़ुश नहीं रहते....''

मुझे लगा, जल में रहकर मगर से बैर नहीं किया जा सकता. वरना मेरी जो ईमानदारी की कमाई हो रही है, वह भी बंद हो जायेगी. और मुझे अपनी नौकरी से भी हाथ धोना पड़ेगा. सौ के बीच में अकेला क्या करूं? चलो, मैं ही यू आंखें मोड़ लेता हूं.....!

सिद्धेश्वर

**२० जून १९५९, पटना; कला स्नातक**

**लेखन** : देश की अनेक पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएं प्रकाशित. विधाएं - कविता, कहानी, लेख चिंतन, भेंटवार्ता, लघुकथा, बालकविता, बालकहानी आदि.

**प्रकाशन** : 'बूंद-बूंद सागर' व 'भीतर का सच' लघुकथा संग्रह; 'इतिहास झूठ बोलता है' कविता संग्रह; 'ढलता सूरज : ढलती शाम' कहानी संग्रह प्रकाशित लघुकथा संग्रह 'भीतर का सच' यंत्रस्थ.

**विशेष** : आकाशवाणी एवं दूरदर्शन (पटना) से रचनाओं का सतत प्रसारण. चित्रकला पेंटिंग्स में भी विशेष उपलब्धि. अब तक ८०० से अधिक रेखाचित्र विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित. अनेक पुरस्कारों सम्मानों से अलंकृत.

**संप्रति** : चल टिकट परीक्षक, राजेंद्रनगर टर्मिनल (पूर्व मध्य रेलवे).

---

वह अपने बेटे को कभी कप वाली आइसक्रीम देता, तो कभी बड़े पैकेटवाला चॉकलेट. पैकेटवाले आलू चिप्स, तो कभी क्रीमवाला बिस्कुट. उसे देख-देख कर ही मेरे बच्चे मुझसे इन चीज़ों की फ़रमाइशें करते थे.... बच्चा तो बच्चा ठहरा वह क्या जाने, किसकी कैसी कमाई है?

.... लेकिन... मैं तो जानता हूं.... बच्चों के भीतर का मनोविज्ञान? कब तक सत्यम अपने भीतर की इच्छा को मारता रहे? कब तक मेरे समझाने पर चुप होता रहे वह ? अपने संगसाथी को मौज मस्ती उड़ाता देख, अपने को मुझसे कब तक बांधे रखे? आख़िर कब तक ?

मेरी पत्नी सुधा अक्सर यह कहकर मुझे समझाती, ''बच्चे तो बच्चे हैं. जिद्द तो करेंगे ही. बच्चों की हर फ़रमाइश को पूरा नहीं किया जा सकता. आप क्यों परेशान होते हैं?'' मैं झुंझलाते हुए जवाब देता- ''लेकिन कब तक, सुधा.... आख़िर कब तक? उसकी छोटी-छोटी चाहतों को भी अनदेखा करता हूं मैं? यह तो हमारी विवशता हो सकती है, उसकी नहीं... ''

... शायद, यही कारण था कि आज बीच बाज़ार में, मैं नंगा खड़ा था. जिसे मैं आदर्श का पाठ पढ़ाता था, वह मेरे सामने, मेरे बेटे और बेटी के सामने, खुले आम मुझे तमाचा मार रहा था.

जब वह मेरी ओर मुड़ा तो सकपका गया. फिर मुस्कुराते हुए बोला- ''बहुत दिनों के बाद तुम्हारे बेटे को देखा तो कुछ खिलाने की इच्छा हो आयी. देखो भाई, तुम्हारा बेटा भी मेरे बेटे की तरह है. तुम यहां कुछ न बोलना...''

थोड़ी देर के लिए मैं ख़ामोश हो गया. मानो मुझे लकवा मार गया हो. यह सब कुछ मेरे बेटे के प्रति उसका प्रेम, मोह, आकर्षण भी तो हो सकता है. यहां पर मेरे द्वारा किये गये विरोध का, मेरे बेटे-बेटी पर क्या असर पड़ेगा? ... मैं कभी सोहन को देख रहा था, कभी दुकान को, तो कभी अपने बेटे सत्यम को.

सत्यम के चेहरे को पढ़ने की नाकामयाब कोशिश करने लगा. उसकी मासूम निगाहें सोहन अंकल द्वारा दी जा रही कपवाली आइसक्रीम की ओर गड़ी हुई थीं. उसे मेरे करीब आने का आभास भी नहीं हुआ था. एकटक से वह अपनी खुली पलकों से, कप वाली आइसक्रीम निहारे जा रहा था.

जिस कप वाली आइसक्रीम को, महीनों से उसके बार-बार अनुरोध करने पर भी, किसी न किसी बहाने टाला जा रहा है. आज जब सोहन अंकल को उसने देखा और प्रणाम किया, तो वह हाथ पकड़कर 'कोल्ड ड्रिंक कॉर्नर की दुकान' पर ले गया, बिना मुझसे पूछे. शायद, सोहन और सत्यम दोनों जानते थे - मुझसे अनुमति नहीं मिल पाती.

मेरी थकी-थकी आंखें, लगातार सत्यम की मासूम अदाओं का निरीक्षण किये जा रही थीं. मानो आज इस रूप में पहली बार उसे देख रहा हूं. उस वक़्त न तो अपने मित्र सोहन पर मुझे क्रोध आया न अपने पुत्र सत्यम पर. क्रोध आया मुझे एक बेटे की छोटी-छोटी इच्छाओं को पूरा न करनेवाले बाप पर? न जाने क्यों,

सत्यम के गालों पर अभावपन के तमाचे का निशान नज़र आने लगा मुझे. मुझे लगा, उसके होंठ सूखे हुए पापड़ की तरह तुड़-मुड़ गये हैं. वह शर्म से सिर को नीचे गिराये हुए है. शायद, यह कप वाली आइसक्रीम, मैं उसे दिलाता, तो उसका सिर गर्व से ऊंचा उठा रहता. लेकिन मेरी वजह से उसका सिर संकोच और भय से झुका हुआ था. कहीं पिताजी मुझसे नाराज न हो जायें, कहीं मुझे गंदा लालची लड़का न समझ बैठें..... शायद मेरा संस्कार उसमें संकोच भर रहा था. उसकी जीभ का स्वाद, आंखों की चमक... उसके भीतर के भय को दूर कर चुकी थी.

मेरी तरफ मुखातिब होने पर भी वह कप वाली आइसक्रीम लेने में संकोच नहीं कर सका. मेरी बेटी गुड़िया अब तक चुप थी. किंतु भैया के हाथों में कप वाली आइसक्रीम देख, उसकी निगाहें मेरे ऊपर टिकने की बजाये मेरे दोस्त सोहन पर टिक गयीं. शायद, वह जानती थी, महीनों से कप वाली आइसक्रीम नहीं दिलानेवाले पापा, आज भी उसकी मांग को ठुकरा देंगे. उसके सोहन अंकल ने उसे भी कप वाली आइसक्रीम दिलवायी. और मैं वहां पर स्तंभित रह गया. न मना करने का दुःसाहस हुआ, न बच्चों को कपवाली आइसक्रीम लौटा देने की सलाह देने की ताकत रह गयी. बीच बाज़ार में ख़ुद को नंगा महसूस करने लगा मैं. जब आदमी ख़ुद नंगा हो जाता है, तब वह अपनी आंखें ख़ुद से चुराने लगता है.

सोहन से बिना कुछ बोले मैं सिर्फ़ अपनी फीकी मुस्कान दिखलाकर सत्यम तथा गुड़िया का हाथ थामे, अपने घर की ओर लौटने लगा. रास्ते भर मैं कुछ नहीं बोला. मेरी चुप्पी से दोनों समझ गये कि पापा उनसे नाख़ुश हैं. वे दोनों संकोच से लकड़ी की चम्मच से कप वाली आइसक्रीम खाये जा रहे थे.

घर पहुंचने पर मेरी पत्नी सुधा पूछ बैठी- ''आप तो मेरी दवाइयां लाने गये थे, शाम के वक़्त दोनों बच्चों के हाथों में कप वाली आइसक्रीम कैसे आयी? उन्हें भी बीमार देखना चाहते हैं क्या आप?''- मैं उसकी बातों का कोई जवाब न दे सका.

''जवाब क्यों नहीं देते आप? चेहरा क्यों रुआंसा बनाये हुए हैं? यहां से गये तो थे मुस्कुराते हुए, लौटे हैं गूंगे और ख़ामोश होकर!''

''जब आदमी ख़ुद ही बीमार हो, वह दूसरों को क्या सलाह दे? आज मेरे बच्चे कप वाली आइसक्रीम खाकर जान जायेंगे कि पापा झूठे हैं. झूठ बोलते हैं कि कप वाली आइसक्रीम, शाम के वक़्त खाने से सर्दी हो जाती है. उन्हें सर्दी नहीं लगेगी....''

मेरी बातों को सुनकर सुधा बोली, ''इतने भावुक क्यों हुए जा रहे हैं जी! आपके मित्र सोहन अक्सर अपने आसपास के बच्चों को बुलाकर चॉकलेट या आइसक्रीम खिलाते रहते हैं.''

''लेकिन, यह सब मुझे न जाने क्यों अच्छा नहीं लगता. लगता है, कोई मेरी ईमानदारी की, मेरे आदर्श की परीक्षा ले रहा है. मुझे अभाव के बाज़ार में खड़ाकर, मेरे नंगेपन पर अट्टहास कर रहा है. मेरी आत्मा को यह सब सहन नहीं होता सुधा, यह सब सहन नहीं होता....''

''आप इतने कमज़ोर क्यों हो रहे हैं बच्चों की बात पर? आप अपने विचार से इतने मजबूत हैं कि आपके आगे हर कोई कमज़ोर है. फिर कमी क्या है? खाने-पीने रहने-पहनने के लिए सब कुछ तो दिया है भगवान ने हमें. आप की जितनी अपनी कमाई है, वही बहुत है मेरे लिए.''

''लेकिन, वह सब कुछ बहुत कम है, मेरे बच्चों के लिए. क्या मैंने कभी अपने बच्चों को कोल्ड ड्रिंक नहीं पिलायी ? कभी आइसक्रीम नहीं खिलायी, कभी...! यह सच है कि कप वाली आइसक्रीम मैंने नहीं दिलायी, लेकिन इसके बिना क्या वे ज़िंदा नहीं थे?''

हमारे वार्तालाप को सुनकर सत्यम और गुड़िया दोनों बच्चे सहम गये. अब उन्हें पूरी तरह आभास हो गया था कि पापा उनसे बहुत नाराज़ हैं. उसने सोहन अंकल से 'कप वाली आइसक्रीम' लेकर अच्छा नहीं किया. सत्यम भीतर से कांपते हुए मेरे करीब आया और बोला- ''पापा मैंने सोहन अंकल से कुछ भी नहीं मांगा था. वे ख़ुद मुझे बुलाकर दुकान पर ले गये. आपको यह सब इतना बुरा लगा है तो मैं बाहर जाकर कप वाली आइसक्रीम फेंक आ रहा हूं....

वह आइसक्रीम फेंकने के लिए जाने लगा तो मैंने उसका हाथ पकड़ लिया,'' अब फेंकने से क्या होगा? मैं तो तुम्हारे अंकल के सामने नंगा हो गया न. पैसा चाहे मेरा लगा हो या उनका, उसे यूं फेंक देना भी गंदी बात

है!...''  मैंने तुम्हें कप वाली आइसक्रीम नहीं दी. इसका मतलब यह तो नहीं कि तुम्हें कोई और, कुछ भी दे तो उसे ले लो!...

मैंने पिछले महीने तुम्हें कप वाली आइसक्रीम नहीं खिलायी थी, बोलो? अब तुम रोज़-रोज़ कप वाली आइसक्रीम, बड़ा पैकेटवाला चॉकलेट ख़रीदने के लिए कहोगे, तो बोलो कहां से इतने सारे पैसे लाऊंगा? चोरी-डकैती करके? तुम्हारे सोहन अंकल, ग़लत तरीके से अधिक पैसे कमाते हैं. मैं उस तरह से पैसे नहीं कमाता. जब तुम्हें मुझसे रोज़-रोज़ चॉकलेट और आइसक्रीम चाहिए, तो ठीक है, मैं भी कल से तुम्हारे सोहन अंकल की तरह ग़लत तरीके से पैसे कमाऊंगा, चोरी करूंगा..... जब तुम्हारे दोस्त तुम्हें चिढ़ायेंगे कि तुम्हारे पापा चोर हैं, डकैत हैं, गंदे आदमी हैं. तब तुम ख़ुश होना....''

न जाने मैं भावुकता में क्या-क्या बोले जा रहा था, सत्यम को समझाने के अंदाज में. उसकी आंखों में लबालब आंसुओं का सैलाब उमड़ता देख, मैं समझ गया, वह मुझसे भी अधिक भावुक हो चला है. वह अपना कान पकड़ते हुए मेरे सामने गिड़गिड़ाने लगा- ''नहीं पापा, आप बहुत अच्छे पापा हैं. आप मेरे लिए गंदे काम नहीं करेंगे, ग़लत ढंग से पैसे नहीं कमायेंगे? मैं अब सोहन अंकल या किसी से भी कुछ नहीं लूंगा... कुछ भी नहीं...''

उसकी बातों को सुनकर मेरा कंठ रुंध गया था. न जाने क्यों मुझे अपने आप से नफ़रत होने लगी. इतनी छोटी-सी जान को क्या-क्या न सुना दिया. मैं अभी भी अपनी भावुकता की गिरफ़्त से मुक्त न हो सका था. अपलक मेरी आंखों से आंसू टपक पड़े और मैं रुंधे कंठ से बोलने लगा- ''नहीं बेटे, ग़लती तुम्हारी नहीं, मेरी है. मेरे पास अधिक पैसे नहीं, इसमें तुम्हारा क्या दोष है? दोष मेरा है! ऐसा करो, तुम सोहन को अपना पापा बना लो और मुझे अंकल समझना. मैं तुम्हें उनके घर पर छोड़ आऊंगा. फिर वे तुम्हें रोज़-रोज़ चॉकलेट का बड़ा पैकेट ख़रीद देंगे, रोज़-रोज़ कप वाली आइसक्रीम देंगे. मम्मी को भी कह दो, वह मुझ जैसे आदर्शवादी आदमी और एक पागल कवि-लेखक को छोड़कर किसी पैसे वाले से शादी कर लें. तब एक से बढ़कर एक गहने, आभूषण मिलेंगे, एक से बढ़कर एक साड़ियां ख़रीदी जायेंगी, घर नहीं महल मिलेगा, महल!''

मेरी बातों को सुनकर सत्यम पूरी तरह से आत्मविह्वल हो उठा और मेरी गोद में अपना सिर छुपाते हुए गिड़गिड़ाने लगा- ''नहीं पापा, मुझे आप इतनी बड़ी सजा न दीजिए! मुझे वह सब कुछ नहीं चाहिए, जिसके लिए आपको ग़लत काम करना पड़े. मुझे पैसे वाला नहीं, आप जैसा पापा चाहिए. मुझे बस आपका प्यार चाहिए. मुझे चोर, बेईमान वाला गंदा पापा नहीं, मुझे आप जैसा अच्छा पापा चाहिए...''

''मुझे भी अमीर आदमी से शादी करने की तोहमत, बार-बार न दीजिए. मैंने कभी कमी महसूस होने दी है क्या? आपने जितना दिया, वह बहुत है. इच्छाओं का भी कहीं अंत होता है क्या? मुझे पैसे वाला गंदा पति नहीं, आप जैसा आदर्श पुरुष चाहिए....''

सत्यम की बातों से मेरा नंगापन ढकने लगा था. मैं उसे समझाने के अंदाज में, उसके बालों पर अंगुली फिराते हुए कह रहा था- ''अपना ख़ून अपना ही होता है बेटा! मैं तुम्हारा हमेशा भला ही सोचता रहा हूं. मां-बाप से पूछे बिना किसी से कुछ लेकर खा लेने के कारण, कई बच्चे बेहोश हो जाते हैं. कई लोग नशीली चीज़ें मिला कर बच्चों को खिला देते हैं. बेहोश बच्चों को ले भागते हैं. तुम दोनों मेरी आंखों के तारे हो, मेरे दिल के दुलारे हो. कहीं तुम भी मुझसे उसकी तरह दूर न हो जाओ, इसलिए ऐसा कहा मैंने. तुम्हारे बिना तो मैं एक पल भी चैन से नहीं रह सकता सत्यम, तुम्हारे बिना तो पल भर भी मुझे राहत नहीं मिलेगी गुड़िया...''

''अब मुझे माफ़ भी कर दो पापा, प्लीज!'' कहते हुए दोनों बच्चे मेरे गले से लिपट गये. उनके कंठ रुंधे हुए थे और वे सिसक रहे थे. मैं सत्यम और गुड़िया को, बेतहाशा चूम रहा था.

**अवसर प्रकाशन,**
**पोस्ट बाक्स न. २०५,करबिगहिया,**
**पटना (बिहार) ८००००१**
**मो- ९२३४७६०३६५**

**निवेदन**

इस अंक के साथ जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त हो रहा है उनसे निवेदन है कि शीघ्र ही अपने ग्राहक शुल्क का नवीनीकरण करा लें.

**-संपादक**

कहानी

# अंगीठी

दिसंबर का महीना. सुबह के लगभग छः बजे का समय लेकिन धुंध से ढकी सुबह रात के आगोश में होने का आभास दे रही थी. दूर क्षितिज में कोहरे के ओवरकोट में छुपा सूरज अपने होने न होने के अहसास में गुम था. सामनेवाली पंक्ति में बने तीनों घर उड़ते हुए बादलों की सफ़ेद चादर में लिपट आंखों से ओझल हो चुके थे. लंबे-लंबे वृक्षों की कोई-कोई फुनगी ही दिखाई पड़ रही थी.

इस ठिठुराने वाली ठंड में उसके दांत बुरी तरह बज रहे थे. ठंड की वजह से नाक का ऊपरी हिस्सा लाल होकर सुन्न पड़ चुका था. हाथ-पैरों की उंगलियां गाजर की मानिंद लाल हो गयी थीं. कभी-कभार सर्द हवाओं की वजह से आंखों में पानी आ जाता. उसने अंगीठी में कुछ लकड़ियां डाल उपले के छोटे-छोटे टुकड़े रख थोड़ा-सा मिट्टी का तेल छिड़का और जलती तीली को अंगीठी में छोड़ दिया. आग धीरे-धीरे लकड़ियों और उपलों में फैलने लगी तो झटपट डलिया से कोयले के टुकड़े उठाकर अंगीठी के ऊपर बड़े करीने से रख दिये. धुएं से भरी अंगीठी उठा बाहर दहलीज पर रख वह रसोई में आकर आटा गूंथने लगी. सब्जी काटकर टोकरी में धोकर रख दी और दोबारा दहलीज पर आ सुलगी हुई अंगीठी उठा रसोई में आ गयी. चाय का पानी अंगीठी पर चढ़ाकर उसने मौसी को आवाज़ लगायी- ''मौसी-मौसी, उठ जाओ. चाय बननेवाली है.''

अंगीठी पर तवा रख उसने अपने लिए पराठा सेंका और चाय के साथ जल्दी-जल्दी खाने लगी. तब तक मौसी भी रसोई में आ अपनी चाय पीने लगी थीं.

''मौसी, आज मैं तुम्हारी शाल ओढ़कर स्कूल चली जाऊं?''

''ओढ़ ले. मैंने क्या कभी तुझे मना किया है. और सुन दो स्वेटर पहनकर जाना. स्कार्फ से कान अच्छी तरह ढक लेना. आज बहुत ठंड है.'' गठरी की तरह अपने में सिमट आग तापती मौसी बोलीं.

''ठीक है मौसी, अब तुम सब्जी छोंक लो मैं स्कूल के लिए तैयार होती हूं.'' कहकर वह तैयार होने कमरे में चली गयी.

मीनाक्षी दसवीं कक्षा में पढ़ती थी. सामने पहाड़ी पर, घर से तकरीबन दो किलोमीटर की दूरी पर पेड़ों के झुरमुट से घिरा लड़कियों का सरकारी स्कूल था, वहीं वह भी जाती थी. बहुत कम लोग उसके स्कूल के नाम 'मीनाक्षी' से वाकिफ थे. आसपास के, मोहल्ले के ज़्यादातर लोग उसे 'मन्नी' के नाम से जानते थे. उसकी उम्र लगभग सोलह वर्ष थी. इकहरे बदन की लंबी-सी गौरवर्ण लड़की. दुबली-पतली होने के कारण उसकी लंबाई कुछ ज़्यादा ही नजर आती थी. उसके पूरे व्यक्तित्व में जो पहली सबसे सुंदर चीज़ थी वह थी उसके घने, काले और लंबे रेशमी बाल. एकदम घटाओं की माफिक. दूसरा उसका कम बोलना. यह कम बोलना उसके व्यक्तित्व को रहस्यमयी-सा बनाये रखता. सबसे अलग-थलग रहती. ना कोई सखी, ना सहेली. पढ़ाई में एकदम अव्वल थी इसलिए सभी अध्यापकों की लाडली थी. मन्नी को पढ़ाई, गृहकार्य और मौसी का ख्याल रखने के अलावा जैसे कोई और ख्याल आता ही न था. वह पूरे मनोयोग से घर और स्कूल की पढ़ाई को संभाले हुए थी.

॥ मनजीत शर्मा 'मीरा' ॥

मन्नी की मौसी चालीस वर्ष की उम्र में ही विधवा हो गयी थीं. मौसा सेना में थे और देश की रक्षा के लिए शहीद हो गये थे. मौसी को सैनिक पारिवारिक पेंशन मिलती थी, उसी से घर का ख़र्च चलता था. मौसा की मृत्यु के पश्चात जो 'फंड और ग्रेच्युटी' का पैसा मिला था उससे हिमाचल के इस शांत पहाड़ी इलाके में छोटा-सा घर ख़रीद लिया था. एक कमरा, रसोई, बरामदा और आगे छोटा-सा आंगन. मौसी बीस वर्ष की आयु में दुल्हन बनीं और चालीस वर्ष की आयु में विधवा भी हो गयीं. संतान भी नहीं हुई. बेऔलाद मौसी को घर खाने

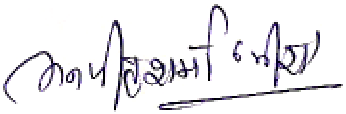


**१८ जनवरी १९६२, हिमाचल प्रदेश के एक गांव में; बी.ए., बी.एड., पी.जी.डी.टी.**

**प्रकाशन** : प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएं प्रकाशित. काव्य-संग्रह 'जारी ये सफर रखना' प्रकाशित. कहानी-संग्रह 'अस्तित्व' प्रकाशित.

**पुरस्कार** : हरियाणा साहित्य अकादमी द्वारा कहानी 'अस्तित्व' पुरस्कृत. गृहमंत्रालय, राजभाषा विभाग, नराकास द्वारा 'साहित्यकार सम्मान'. विभिन्न सांस्कृतिक गतिविधियों में ढेरों पुरस्कार.

**विशेष** : दूरदर्शन पर काव्य-पाठ, चंडीगंढ़ के लेखकों की 'चंडीगढ़ साहित्य अकादमी' द्वारा शीघ्र प्रकाश्य पुस्तक में कविताएं एक कहानी संकलित. सांस्कृतिक कार्यक्रमों में मंच-संचालन. दो पंजाबी टेलीफ़िल्मों में अभिनय.

**संप्रति** : केंद्र सरकार में अनुभाग अधिकारी.


को दौड़ता. मन्नी तब दस वर्ष की रही होगी जब मौसी उसे अपने साथ ले आयी थीं. उसे सरकारी स्कूल में दाख़िल करा दिया था. तब से मन्नी और मौसी एक-दूसरे की पूरक हो गयी थीं.

मौसी मन्नी को बेहद प्यार करती थीं. वे निःसंतान थीं. इसलिए ममता की उस गहराई को वे शायद ना महसूस करती हों जो एक औरत के मन में तब पैदा होती है जब वह बच्चे को जन्म देती है, मां बनती है, अपना दूध पिलाती है. बच्चे के गीले बिछौने बदलती है और उसकी किलकारियों में खो पूरे संसार से कट जाती है. लेकिन उनके मन में मन्नी के प्रति जितनी ममता थी, वह भी एक मां की ममता से किसी मायने में कम न थी. वे अब भी उसे अपने साथ ही सुलाती थीं. उसे दुलारती रहतीं और उसकी हर बात का ख्याल रखतीं. जब कभी मन्नी स्कूल से आने में थोड़ी भी देर कर देती तो वे पैदल ही स्कूल की ओर उसे खोजते-खोजते चल देतीं. उनकी ज़िंदगी का वह एकमात्र सहारा थी. वे उसे पढ़ा-लिखाकर अपने पैरों पर खड़ा करना चाहती थीं ताकि शादी के बाद भी वह आर्थिक रूप से किसी पर निर्भर न रहे. मौसी ने अपनी बहन यानि मन्नी की मां को भी स्पष्ट कह दिया था कि अब उनका मन्नी पर कोई अधिकार नही है. मन्नी सिर्फ़ उसकी बेटी है. वो ही उसे पढ़ायेगी-लिखायेगी और किसी सुयोग्य वर से उसकी शादी करेगी.

दो दिन से मौसम बेहद ख़राब था. कभी धूल-भरी तेज़ हवाएं चलतीं तो कभी छिटपुट बारिश के छींटे धरती को थोड़ा गीला कर देते. कई दिनों से धूप का सुख भी नसीब नहीं हुआ था. मौसी सुबह की सुलगी अंगीठी में कोयले डाल-डालकर दिन-भर उससे चिपकी रहीं. बार-बार चाय बना-बनाकर पीती रहीं. सर्दियों में उन्हें चाय पीना बेहद अच्छा लगता था. ठंड तो भागती ही, उनका समय भी आराम से कट जाता था. जब अंगीठी बुझने वाली होती तो वे कमरे में आ रजाई में दुबक जातीं और मन्नी के स्कूल से आने का इंतज़ार करने लगतीं.

शाम के चार बज गये. मन्नी अभी तक स्कूल से नहीं लौटी थी. मौसी की चिंता बढ़ने लगी. ''मन्नी ठीक तो है? कहीं उसके साथ कोई दुर्घटना, कोई अनहोनी तो नहीं हो गयी.'' तरह-तरह के ख्याल मौसी के दिमाग में खलबली मचाने लगे. किससे पूछूं? सहसा मौसी को याद आया कि नुक्कड़ वाले घर की रीना भी उसी स्कूल में दसवीं कक्षा में पढ़ती है. शायद उसे पता हो कि स्कूल की छुट्टी आज कितने बजे हुई थी. मौसी ने मोटा-सा स्वेटर पहनकर शॉल ओढ़ ली. पैरों को ठंड से बचाने के लिए मौजे और गुरगाबी पहनी और रीना के घर की ओर जाने लगी. तभी उन्हें दूर पगडंडी पर मन्नी आती दिखाई दी. मौसी की जान में जान आयी. जैसे ही मन्नी निकट पहुंची, मौसी ने उसे बुरी तरह डांट दिया, ''इतनी देर कैसे लगा दी? कहां थी? देर से आना था तो बोलकर क्यों नहीं गयी? तुझे नहीं पता

कि...?''

''बस, बस मौसी, अब शांत हो जाओ. मेरा कोई कसूर नहीं है. स्कूल की छुट्टी तो दो बजे ही हो गयी थी लेकिन हमारी विज्ञान और गणित की एकस्ट्रा क्लासेज थीं. टीचर ने आज ही बताया वरना मैं कभी तुम्हें बिना बताये कहीं रुकती हूं?''

मौसी का ग़ुस्सा पल में शांत हो गया. बोली- ''मेरी तो जान ही निकल गयी थी. तू तो जानती ही है कि तेरे बिना मेरा और कोई नहीं है. मेरी तो ज़िंदगी ही...''

''मेरी, अच्छी मौसी. माफ़ कर दो.'' मन्नी ने झूठ-मूठ को कान पकड़ लिये और शरारत से मुस्कुरा दी.

घर पहुंचते ही मन्नी ने बस्ता एक ओर रखा और हाथ-मुंह धोकर रसोई में चली गयी. पतीली का ढक्कन उठाया और ठंडी सब्जी ही प्लेट में डाल खाना खाने बैठ गयी. मौसी कहती रह गयीं कि मैं स्टोव जलाकर गर्म कर देती हूं पर मन्नी को जोरों की भूख लगी थी. और पांच मिनट में ही रोटी-सब्जी खा वह बिस्तर में घुस गयी.

''मौसी पता है आज विज्ञान के मास्टर जी ने क्या पढ़ाया?''

मौसी ने अपनी निगाहें मन्नी के चेहरे पर टिका दीं.

''बताऊं....?'' मन्नी की आंखों में विस्मय के जुगनू झिलमिलाने लगे.

''अब बोल भी....''

''तुम्हें यकीन नहीं होगा मौसी. मास्टर जी कह रहे थे कि हमें रात को जलती अंगीठी लेकर, सारे दरवाज़े-खिड़कियां बंद करके नहीं सोना चाहिए.''

''क्यों....?''

''क्योंकि जब अंगीठी जल रही होती है तो उसमें से बेहद ज़हरीली गैस निकलती है जो जीवन के लिए बहुत ख़तरनाक होती है. मास्टर जी ने यह भी बताया कि इस गैस की वजह से लोग कई बार नींद में ही मर जाते हैं.''

मौसी जानती थीं फिर भी अनजान बन बोलीं- ''अच्छा! फिर तो हम रात को खाना बनाने के बाद रसोई में भी कभी अंगीठी को नहीं छोड़ेंगे. हमेशा आंगन में ही रखेंगे.''

''हां मौसी! देखा पढ़ाई-लिखाई से हमें कितनी नयी-नयी बातें पता लगती हैं. तभी तो कहते हैं कि इंसान को ख़ूब पढ़ना चाहिए.''

कुछ देर सोचकर वह फिर कहने लगी- ''कितनी अजीब बात है ना मौसी, हम अपना पेट भरने के लिए इसी अंगीठी पर खाना बनाते हैं और यही अंगीठी हमारी जान भी ले लेती है. ज़िंदगी और मौत दोनों इस अंगीठी में छुपी हैं.'' मन्नी दार्शनिक हो उठी.

''हां बेटी! बहुत बड़ी-बड़ी बातें करने लगी है तू. पर मैं ठहरी कमपढ़, अज्ञान. मैं क्या जानूं इन बातों के मतलब. मेरी बेटी खूब पढ़े, बस यही मेरी तमन्ना है.'' कहकर मौसी मन्नी का हाथ अपने हाथ में लेकर कुछ सोचने लगीं. उनकी आंखें भर आयीं. थोड़ी देर तक वे कुछ न बोलीं. मन्नी ने मौसी की ओर देखा- ''तुम रो रही हो, मौसी?''

मौसी की आंखों से दो बूंद आंसू टपक पड़े. कहने लगीं- ''तेरे मौसा सच्चे फौजी थे. कड़कती ठंड में, तपती धूप में, आंधी, तूफान और बारिश में भी देश की सीमा पर डटे रहते थे. ड्यूटी ही ऐसी थी. साल में एक बार घर आते थे. कभी-कभी दो बार आना भी हो जाता था. जब भी आते, मेरे लिए ढेर सारा सामान लाते. फौज की बातें सुना-सुनाकर इतना हंसाते कि मेरे पेट में बल पड़ जाते. वे बड़े अनुशासन प्रिय थे. जब गांव आते तब भी उनका अनुशासन देखने लायक होता. सुबह पांच बजे उठकर वर्जिश करते. नीम की दातुन लेकर लंबी सैर पर निकल जाते. वापिस आते तो पसीना-पसीना होते. मैं कहती- ''कम से कम यहां तो आराम कर लो.'' वे कहते- ''फौजी के लिए आराम हराम है. वो फौजी ही क्या जो सूरज चढ़े तक लंबी तानकर सोता रहे. देश की रक्षा ऐसे ही नहीं होती. शरीर में जान होनी चाहिए और मन में इच्छा-शक्ति. तभी दुश्मनों को मारकर देश का सिपाही शहीद होता है. कायर का जीना झूठा है, जो केवल डरना जानता है. जो अपनी रक्षा नहीं कर सकता वो देश की रक्षा क्या करेगा. सच्चा जीवन वीरों का है जो मरना और मारना दोनों जानते हैं. देश के लिए शहीद होना किस्मत वालों को ही नसीब होता है और तेरे मौसा देश की रक्षा करते हुए सचमुच शहीद हो गये. मुझे गर्व है उन पर कि उन्होंने दुश्मन को पीठ नहीं दिखायी. डटकर दुश्मन का मुकाबला किया.''

कमरे में सन्नाटा छा गया. थोड़ी देर तक दोनों में से कोई कुछ नहीं बोला.

आंसू जब्त करतीं मौसी भर्राये गले से फिर कहने

लगीं- ''तू तब बहुत छोटी थी. तेरे मौसा तुझसे बहुत प्यार करते थे. उनकी इच्छा थी कि हम तुझे गोद ले लेंगे पर....'' और मौसी फूट-फूटकर रोने लगीं. पति की मौत ने उन्हें अंदर ही अंदर तोड़ दिया था पर वे कुछ कहती नहीं थीं. मन्नी के सामने तो वे ऐसी बातों का जिक्र भी नहीं करती थीं. पर न जाने क्यों आज उनका मन कर रहा था कि उन्हीं की बातें करती रहें.

''मुझे सब याद है मौसी कि मौसा मुझसे कितना प्यार करते थे. वे मुझे हमेशा बहादुर लड़की बनने के लिए कहते थे. एक बार जब मैं कॉक्रोच से डरकर भागी थी और फिसल गयी थी तो वे बड़ा हंसे थे. सबने मेरा ख़ूब मजाक उड़ाया था.''

फिर उसे याद आया कि जब कभी लाइट चली जाती थी तो उसका छोटा भाई अंधेरे में तरह-तरह की आवाज़ें निकालकर उसे डराया करता था और वह ज़ोर-ज़ोर से रोने लगती थी. तब मां भाई को झूठ-मूठ डांटते हुए उसे अपने से सटाकर कहती थीं- ''पता नहीं कब बड़ी होगी यह लड़की?''

''तुम्हें याद है मौसी....?'' कुछ सोचती हुई-सी वह बोली.

''क्या....?''

''वह गुलाबी फ्रॉकवाली गुड़िया.''

''हां.''

''जब वो गुड़िया उन्होंने मुझे दी थी तो मेरे सिर पर प्यार से हाथ रखते हुए उन्होंने कहा था- ''मेरी लाडली मन्नी, तू इस छुई-मुई गुड़िया जैसी न बनना. ये तो खिलौने हैं जिनसे बच्चे खेलते हैं लेकिन ज़िंदगी के खेल को खेलने के लिए बड़ी हिम्मत चाहिए... बहुत हिम्मत.'' तब मुझे उनकी बात समझ नहीं आयी थी कि गुड़िया और हिम्मत का क्या संबंध है. लेकिन आज समझ सकती हूं. काश मौसा ज़िंदा होते.'' मन्नी भावुक हो उठी.

''मैं सोच रही हूं कल तेरी मां से मिल आऊं.'' मौसी ने मन्नी को गमगीन देखा तो बात का विषय बदलती हुई बोली.

''कल....?'' मन्नी हैरान हो उठी.

''हां, शाम तक लौट आऊंगी.''

''यह एकदम तुम्हें मां से मिलने की क्या सूझी?'' मन्नी असमंजस में भर बोली.

''पिछली बार भी कहां जा पायी थी. हर बार पत्र में आने को लिखती है पर....'' मौसी आह-सी भरकर बोलीं.

''वो तो ठीक है मौसी पर इतनी ठंड में....?''

''तू चिंता न कर.... शाम तक लौट आऊंगी ना. एक घंटे का तो रास्ता है. तेरी पढ़ाई ख़राब होगी वरना तुझे भी ले चलती.''

''मैं तो परीक्षा के बाद चलूंगी.'' मन्नी की आंखों के आगे मां, पापा, बड़ी बहन और छोटे भाई के चेहरे घूम गये.

अगले दिन मौसम बेहद ख़राब था पर मन्नी के स्कूल जाने के बाद मौसी अपनी बहन से मिलने चली ही गयीं.

मन्नी चार बजे घर पहुंची और खाना खाकर रजाई में दुबक गयी. दिन-भर की थकी-हारी मन्नी रजाई की गर्मी पा सुस्ताने लगी और शीघ्र ही नींद के आगोश में समा गयी. बाहर तेज़ हवाओं की सायं-सायं की आवाज़ सुनकर उसकी नींद टूटी, देखा शाम के छः बज चुके थे. वह सोचने लगी कि मौसी के पहुंचने से पहले ही अंगीठी सुलगा लूं. बेचारी मौसी इतनी ठंड में आयेंगी. आते ही उनके लिए गर्म-गर्म चाय बना दूंगी. आंगन में बैठ वह अंगीठी सुलगाने लगी तो देखा कोयले ही नहीं हैं.... बस दो चार लकड़ी के टुकड़ों के साथ कुछ उपले टीन के नीचे पड़े थे.

घुमावदार गली के नुक्कड़ पर ही कोयले का टाल था. कोई और दिन होता तो मन्नी ऐसे ख़राब मौसम में कभी घर के बाहर ना निकलती. पर उसकी मां से मिलकर वापिस लौटती, ठंड में ठिठुरती मौसी उसे बार-बार दिखाई पड़ रही थीं. वह जानती थी कि कड़कती ठंड में मौसी अंगीठी से चिपकी रहती हैं और बार-बार चाय बनाकर पीती रहती हैं.

शाम घिर चुकी थी. सायं-सायं करती हवाओं के थपेड़े सहती, तेज़-तेज़ कदम रखती वह टाल पर पहुंची. देखा, आसपास कोई दिखाई नहीं दे रहा था. बड़े-से गोदामनुमा कमरे के आगे बरामदे के नीचे अंगीठी दहक रही थी. उसने आवाज़ लगायी- ''भोला चाचा.... भोला चाचा...?''

कोई जबाब नहीं आया. सोचा कुछ देर इंतज़ार कर लूं. वह बरामदे में अंगीठी के पास बैठ गयी. पांच मिनट बीत गये. हल्की-हल्की बूंदाबांदी शुरू हो गयी थी. वह उठने ही लगी थी कि भोला चाचा आते दिखायी दिये.

''मन्नी, कब से बैठी है?''

''चाचा, बड़ी देर हो गयी. जल्दी से दस किलो कोयले तोल दो, मौसी आती ही होंगी.'' मन्नी व्याकुलता से बोली.

''क्यों मौसी कहां गयी है?''

''मां से मिलने.''

''अच्छा तू अंगीठी कमरे में रख दे, बाहर बौछार से बुझ जायेगी, मैं तब तक कोयले तोलता हूं.''

मन्नी अंगीठी कमरे में रख उसके पास ही बैठ हाथ तापने लगी. जब से वह मौसी के पास रहने आयी थी भोला चाचा के टाल से ही कोयला ख़रीदते देखा था क्योंकि मोहल्ले में वही एक टाल था. मौसी उसे टाल पर कभी नहीं भेजती थीं. पहली बार जब वह टाल से कोयला ख़रीदकर घर लायी थी तो मौसी उस पर बरस पड़ीं थीं- ''क्यों गयी थी वहां? मैंने तुझे मना किया है ना. शराबी-कबाबी आदमी है वह... घटिया और कमीना. पचास साल का होने को आया है पर....'' भोला चाचा को कोयले की बोरी लेकर कमरे की तरफ आते देख उसके विचारों को विराम लग गया.

''ठहर मैं बोरी का मुंह सुतली से बांध देता हूं, नहीं तो तू सारा कोयला रास्ते में ही बिखेर देगी.'' बरामदे में बोरी टिका भोला चाचा कमरे में सुतली ढूंढ़ने लगे.

अचानक बहुत तेज़ अंधड़ आया. तेज़ हवाएं चलने लगीं. सूखे पत्ते, काग़ज़ और कपड़ों के चीथड़े हवा में उड़ने लगे. लंबे-लंबे पेड़ ऐसे हिलने लगे जैसे जड़ों से उखड़ जायेंगे. कमरे के दरवाज़े के दोनों पट खट-खट बजने लगे. फिर धूल-भरी तेज़ बारिश शुरू हो गयी. बहुत तेज़ गर्जन हुआ जैसे कहीं बिजली गिरी हो और पूरे मोहल्ले की 'लाइट' चली गयी. चारों तरफ घुप्प अंधेरा छा गया. बस कमरे में दहकती अंगीठी से थोड़ी-सी रोशनी हो रही थी. मन्नी को डर लगने लगा. उसने कमरे से बाहर जाने के लिए कदम बढ़ाया ही था कि भोला चाचा के मजबूत हाथों ने उसे पीछे से दबोच लिया. उसके चीख़ मारने से पहले ही उसने अपने चौड़े हाथ से उसका मुंह बंद कर दिया. चीख़ हलक में दबकर रह गयी. वह मछली की तरह तड़पने लगी. कमरे का दरवाज़ा हवा से और ज़ोर-ज़ोर से बजने लगा. बादलों की गर्जना किसी राक्षस के अट्टहास की तरह फिजाओं में घुलने लगी. तेज़ बारिश के शोर ने वातावरण को अत्याधिक भयानक बना दिया. उस राक्षस ने कली को मसल दिया और वह कुछ न कर सकी.

अपनी तार-तार हुई इज़्ज़त को लेकर कलपते मन से वह कमरे से बाहर निकली. तूफ़ान थम चुका था. बारिश रुक चुकी थी. घर पहुंची. मौसी अभी तक नहीं आयी थीं. उसने अंधेरे घर में दीया जलाया, फट गये कपड़े बदले और पलंग पर बैठ सुबकने लगी. उसकी ज़िंदगी में यह कैसा तूफ़ान आया था? उसे समझ नहीं आ रहा था कि वह क्या करे. सोचने-समझने की शक्ति जैसे ख़त्म हो चुकी थी. इस हादसे ने उसकी शांत और निर्मल ज़िंदगी में भूचाल ला दिया था.

लगभग आधे घंटे बाद मौसी भी आ गयीं. मन्नी ने

## गीत

✍ कृपा शंकर शर्मा 'अचूक'

मूक नयनों का समर्पण प्यार से
आज लहरों का निमंत्रण पार से.
आज पूनम की किरण मुस्कायेगी
भीगती रजनी मिलन को आयेगी,
रूप माधुर्य हो रहा - श्रृंगार से
आज लहरों का निमंत्रण पार से.
बांसुरी अनुभूति की बजने लगी
रागिनी अब राग संग सजने लगी,
भावना डूबी हुई अधिभार से
आज लहरों का निमंत्रण पार से.
गीत बनकर आज तुम आने लगे
सांस से स्वर-सार हो जाने लगे,
हाथ सुख-दुःख से उठे संसार से
आज लहरों का निमंत्रण पार से.
लौटकर आया नहीं जो भी गया
वास्ता जिससे था उसका हो गया,
क्या उसे अभिप्राय सार-असार से
आज लहरों का निमंत्रण पार से.
दे दिया वैभव 'अचूक' सुहावना
शेष क्या जो रह गया है मांगना,
लौट सकता कौन खाली ! द्वार से
आज लहरों का निमंत्रण पार से.

३८-ए, विजय नगर, करतारपुरा
जयपुर- ३०२००६

देखा गीले कपड़ों में वे ठिठुर रही हैं. बिना कुछ कहे-सुने वह दरवाज़े से एक ओर हट गयी. मौसी जल्दी-जल्दी कपड़े बदलने लगीं. साथ ही साथ बोलती भी जा रही थीं- ''ख़राब मौसम की वजह से बस समय पर नहीं आयी. अच्छा होता आज न जाती... बुरा हाल हो गया.'' फिर लंबे-लंबे डग भरतीं रसोई की तरफ गयीं. तुरंत वापिस आ मन्नी से पूछा- ''अंगीठी नहीं जलायी....?'' मन्नी जो अब तक रजाई में दुबक चुकी थी, धीरे से बोली- ''कोयले नहीं थे.''

''पलंग के नीचे नहीं देखे?.... मैंने बारिश से बचाकर वहां रखे थे.... अच्छा ठीक है, मैं स्टोव पर ही चाय बना लेती हूं.''

अब तक तो मन्नी उनके हाथ में गर्म-गर्म चाय का गिलास पकड़ा चुकी होती पर आज...?

मौसी ने समझा बेचारी थक गयी है. चार बजे स्कूल से आयी होगी. उन्होंने रसोई में आकर मोमबत्ती जलाकर उजाला किया और चाय बनाकर मन्नी को आवाज़ लगायी- ''मन्नी, आ जा तू भी चाय पी ले.''

कोई जबाब नहीं आया. वे चाय का गिलास लेकर कमरे में आ गयी.

मन्नी आंखें मूंदे लेटी थी.

''शायद आंख लग गयी हैं.'' उन्होंने सोचा और वापिस रसोई में आकर रात के खाने की तैयारी करने लगीं.

अगले दिन मौसी उसे उसकी मां और भाई-बहनों के हालचाल बताने लगीं. मन्नी हां-हूं करती रही. मौसी ने महसूस किया कि कल से मन्नी चुप-चुप सी है. आज स्कूल भी नहीं गयी. ठीक से बात भी नहीं कर रही. ढंग से खाना भी नहीं खा रही. फूल सा चेहरा मुरझा-सा गया है. उन्होंने बड़े प्यार से पूछा- ''क्या बात है मन्नी, तेरी तबियत तो ठीक है?''

मन्नी कुछ नहीं बोली बस शून्य में देखती रही.

मौसी ने पास आकर उसे अपने अंक में समेट लिया. मन्नी का पूरा शरीर ज्वर से तप रहा था. वे घबरा उठीं. ये लड़की भी अजीब है. कोई दुख-दर्द हो तो बतायेगी नहीं. वे अपने आप से बड़बड़ाने लगीं.

''कब से बुखार है? चल तुझे डॉक्टर को दिखा लाऊं.'' उन्होंने उसे प्यार से दुलारते हुए कहा. मौसी का स्नेह-भरा स्पर्श पा मन्नी उनके सीने से लगकर ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी.

''पागल! रो मत. ठीक हो जायेगी. अच्छा, तू रजाई में बैठी रह. मैं तेरे लिए ख़ुद ही डॉक्टर से दवा ले आती हूं.'' कहकर मौसी जाने लगीं तो मन्नी ने उनकी शाल पकड़ ली. मौसी ठहर गयीं. लगा जैसे वह कुछ कहना चाह रही हो.

''क्या बात है? तू चिंता क्यों करती है? ठीक हो जायेगी. पगली! बुखार ही तो है.''

''तुम मुझे छोड़कर मां से मिलने क्यों चली गयी थीं?'' उसने कहना चाहा पर जुबान ने साथ नहीं दिया. और फिर मुंह तक रजाई ओढ़ वह लेट गयी.

मौसी को उसका व्यवहार कुछ अजीब-सा लगा.

मौसी के जाने के बाद मन्नी पर फिर वही काली भयानक शाम हावी हो गयी. कल्पना से ही उसका पूरा शरीर सिहर गया. बार-बार उस राक्षस का डरावना चेहरा उसकी आंखों के आगे आकर उसे डराने लगा. वह अंदर ही अंदर इतनी दहशतज़दा थी कि समझ नहीं पा रही थी कि उस काले अतीत से स्वयं को कैसे उबारे... कैसे छुटकारा दिलाये. उसका बेचैन मन किसी भी तरह चैन नहीं पा रहा था. नींद आंखों की दुश्मन बन गयी थी और हंसी, मुस्कान, उल्लास सब उससे रूठ गये थे. मस्तिष्क में उठते तरह-तरह के सवाल मन को विचलित कर रहे थे. तन के ज्वर की लपटें मन को झुलसा रही थीं. बहुत देर तक शून्य में ताकती रहीं उसकी निगाहें सामने दीवार पर सुसज्जित बेस्ट स्टूडेंट का अवार्ड लेती अपनी तस्वीर पर अटक गयीं. दिल के दर्पण में देखा तो स्कूल के प्रांगण में हंसती, बतियाती लड़कियों के बीच उसे अपना चेहरा बेहद बदसूरत नज़र आया. उसकी स्वयं की आंखें जैसे हज़ारों लोगों की आंखें बनकर उसके पूरे वजूद में धंस गयीं. और फिर कई जोड़ी आंखें काली-काली मधुमक्खियों में बदल जगह-जगह डंक मारने लगीं. ज़हर बुझे डंकों से उसका पूरा शरीर नीला पड़ने लगा और उसे मूर्च्छा-सी हो आयी.

''मौसी को बताऊंगी तो...?'' नहीं-नहीं मैं मौसी को कुछ नहीं बताऊंगी. यदि बात खुल गयी तो सारे मोहल्ले में बदनामी हो जायेगी. बेचारी मौसी भी उस दरिंदे का क्या बिगाड़ लेंगी. मैं कर भी क्या सकती हूं?'' वह असहाय-सी हो उठी. आज उसे अपने मौसा की बेहद याद आयी.

दवाई से उसका 'ज्वर' कुछ कम हुआ लेकिन सीने में धधकती आग ठंडी नहीं हुई थी. फिर उसने कई तरह के तर्क-वितर्क से अपने दुखी मन को समझाने की कोशिश की पर मन शांत न हुआ. ''काश! उस दिन मौसी मां से मिलने ना जातीं... काश! मौसम ख़राब न हुआ होता.... काश! मौसी को घर लौटने में देर न होती... काश! वह समझ पाती कि मौसी उसे टाल पर क्यों नहीं जाने देती थीं... काश! कोयले ख़त्म न हुए होते.... काश! वह टाल पर न जाती... काश! वह बरामदे से अंगीठी उठाकर कमरे में न बैठती .... काश! ... काश!... काश!'' उसका सिर फटने लगा.

मौसी ने उसे सो जाने के लिए कहा पर, ''थोड़ी देर पढ़कर सो जाऊंगी'' कहकर दीया उठा वह रसोई में आकर बैठ गयी. उसकी आंखों में नींद कहां थी. वहां तो वही काले साये खुली या बंद आंखों में बिना किसी भेदभाव के मंडरा रहे थे.

रात के नौ बज चुके थे. मौसी खा-पीकर कमरे में सोने जा चुकी थीं. मन्नी रसोई में अंगीठी के सामने किताबें खोले बैठी थी पर किताब का एक भी अक्षर उसे स्पष्ट दिखाई नहीं दे रहा था. काले-काले, छोटे-छोटे अक्षर धीरे-धीरे आकार लेने लगे और एक बहुत बड़े राक्षस में तब्दील हो गये. दो विकराल पंजों ने उसे दबोच लिया. उसका दम घुटने लगा. हलक से एक घुटी-घुटी सी चीख़ निकली और वह सहम गयी. कितनी देर तक वह वैसे ही निश्चल-सी बैठी रही. इतनी ठंड में भी उसका पूरा शरीर पसीने से नहा गया. मन के तहखाने में प्रतिशोध की एक अंगीठी जल रही थी लेकिन हिम्मत के कोयले कहां से लाये? अंगीठी से एक चिंगारी उचटकर उसके हाथ पर गिरी तो दर्द की एक लहर पूरे शरीर में दौड़ गयी. मन में जलते शोले भड़क उठे. हाथ सहलाते हुए उसने मौसी को आवाज़ दी- ''मौसी...''

कोई प्रतिउत्तर नहीं मिला तो उसने कमरे में आकर दोबारा पुकारा- ''मौसी....?''

फिर कोई जबाब न पाकर वह समझ गयी कि मौसी सो चुकी हैं. बिजली की सी गति से उसके मस्तिष्क में कुछ कौंधा और वह तीव्रता से घर के बाहर निकल गयी.

बाहर जैसे अमावस-सा घुप्प अंधेरा पसरा पड़ा था. अपनी आंखों के नन्हें-नन्हें तारों को ठंड से बचाता चांद बादलों की रजाई में दुबक चुका था.... और चांद को ढूंढ़ती गुमसुम रात अपने दामन में कालिमा का दाग लिये अंधेरे में तन्हा सिसक रही थी. जहां हवा के कलेजे से उठती हूक से घबराकर पूरा इलाका अपने आशियानों में सिमट चुका था वहीं सायं-सायं की आवाज़ें करते देवदार के ऊंचे-ऊंचे वृक्ष बाहर ठंड में ठिठुरने के बावजूद सीमा पर तैनात प्रहरी से डटे खड़े थे. दूर कहीं से किसी कुत्ते के रोने की आवाज़ रात का सीना चीर रही थी. तेज़ कदम मन्नी हड़बड़ाहट में पत्थर की ठोकर खाकर लड़खड़ा गयी पर दर्द की परवाह न कर अपनी चाल में और अधिक तेज़ी ला हिम्मत से ऊबड़-खाबड़ रास्ते पर आगे बढ़ गयी.

जगह-जगह कोयले के ढेरों से अटा पड़ा टाल रात के साये में किसी भुतहा मकान सा प्रतीत हो रहा था. मन्नी ने सहमते हुए चारों ओर नज़रें दौड़ायीं. दूर-दूर तक कोई नहीं था. आश्वस्त होकर वह बरामदे के निकट पहुंची. उसकी निगाहें बंद दरवाज़े पर अटक गयीं. अपनी बेकाबू होती सांसों को वह नियंत्रित कर ही रही थी कि ठंड से कांपती टांगों को कुछ गर्मी का अहसास हुआ. उसने नज़रें घुमाकर देखा... पास ही रखी अंगीठी अंतिम सांसें ले रही थी. अंगीठी बाहर रखी देखकर उसे निराशा हुई. कुछ पल वह असमंजस की स्थिति में वहीं खड़ी रही. फिर कुछ सोचते हुए उसने कांपते हाथों से दरवाज़े पर दस्तक दे दी.

खटखट की आवाज़ सुनकर बड़ी देर में भोला ने दरवाज़ा खोला. सायं-सायं करती सर्द हवाओं के टकराते ही दरवाज़े के दोनों पट बज उठे और धुंधले कांच से छनकर आता लालटेन का पीला मद्धम प्रकाश गहराती फिजाओं में भी अपनी उपस्थिति दर्ज कराने लगा. भोला ने दोनों हाथों से पट पकड़कर बाहर झांका. बरामदे में सिर झुकाये मन्नी खड़ी थी. उसे सहसा विश्वास नहीं हुआ. ''इतनी रात को....?'' आंखें मलकर उसने दोबारा देखा. मन्नी ही थी.

''कोयले चाहिए...?'' उसने कुटिल मुस्कान से पूछा.

मन्नी कुछ नहीं बोली, बस चोट लगे अंगूठे को देखती रही. कुछ देर तक मौन पसरा रहा.

उसने फिर कहा- ''आ जा, अंदर आ जा... मर जायेगी... बाहर ठंड में'', शराब के नशे में उसकी आवाज़ और शरीर दोनों लड़खड़ा रहे थे.

कुछ डर और कुछ ठंड से मन्नी का शरीर सूखे पत्ते की तरह कांपने लगा... और फिर शाल को कसकर लपेटकर वह कमरे में आकर खड़ी हो गयी.

''थोड़ी देर बैठकर हाथ ताप ले.... गर्मी आ जायेगी शरीर में....'' तन से कसकर लपेटी शाल को कुत्सित भाव से देखते हुए भोला बोला- ''अंगीठी बुझी नहीं होगी अभी.... जा, अंदर उठा ला. दो-चार कोयले डालते ही सुलग जायेगी.''

मन्नी कुछ नहीं बोली. अंगीठी बाहर से उठाकर वह उसके पास ही सिमट गयी. भोला आकर नज़दीक बैठा तो नथुनों में शराब की दुर्गंध का भभका भर जाने से एक पल को उसका जी मितला गया. उसके मस्तिष्क में डर और प्रतिहिंसा की आंधी का झंझावात चल रहा था. और सब कुछ लगभग उसी तरह स्वतः घटित हो रहा था जैसा उसने सोचा था.

मन्नी को इतना नज़दीक देखकर हैरान-परेशान भोला अजीब-सी निग़ाहों से उसे घूरने लगा. उसके बदन को अंदर तक टटोलती उसकी निग़ाहों में वासना का शैतान सिर उठाने लगा. अंगीठी में कोयले डालती मन्नी की अचानक उसने कलाई पकड़ ली.

एक झटके से मन्नी ने अपनी कलाई छुड़ा ली. डर और एक अनजानी-सी आशंका से उसका दिल ज़ोर-ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगा.

''अरी, डर क्यों रही है?... मैं खा थोड़े ही जाऊंगा तुझे. मैं तो बस देख रहा था कि गर्म हुई हैं कि नहीं... तेरी हथेलियां.'' वह कुटिलता से मुस्कराया.

''मौसी नुक्कड़ पर ही खड़ी हैं.'' मन्नी साफ़ झूठ बोल गयी.'' अभी कोयले छोड़ आऊं... '' डर और उत्तेजना से उसे लगा कि उसका दिल पसलियों से टकरा रहा है लेकिन अपने अंदर के तूफान को उसने चेहरे पर प्रकट नहीं होने दिया. ''तुम अंदर से कुंडी मत लगाना. बेकार खटका होगा. मैं बाहर से लगा जाऊंगी.''

मन्नी से आश्वासन पाकर भोला ख़ुश हो गया- ''अरे, तू तो बड़ी समझदार हो गयी.''

मन्नी के जाने के बाद भोला ने ख़ुशी और उत्तेजना में शराब की नयी बोतल खोल ली. गिलास में शराब उंडेली तो मन्नी का खिलते हुए फूल-सा यौवन गिलास में उतर आया. एक ही झटके में उसने देसी शराब का पूरा गिलास हलक में उंडेल लिया. मन्नी के आने तक अंगीठी कहीं बुझ ना जाये यह सोचकर उसने कुछ और कोयले भरी हुई अंगीठी में ठूस दिये. मन्नी के आने की सुखद कल्पना में अभी ज़्यादा समय नहीं गुज़रा था कि उसने एक पेग और बना लिया. आने वाले उन रंगीन पलों में वह पूरी तरह डूब जाना चाहता था. इंतज़ार का एक-एक पल उसे भारी लग रहा था और इस भारीपन को सहने के लिए ना तो उसका शरीर तैयार था, ना मस्तिष्क. शराब का भरपूर नशा उसे हो चुका था और उसके हाथों अब इतनी भी स्थिरता नहीं बची थी कि बिना छलकाये गिलास को अपने होठों से लगा सके. इंतज़ार के लम्हों का अहसास कम करने के लिए उसने लड़खड़ाते हाथों से एक पेग और गिलास में डाल ही लिया.

अंगीठी अपने पूरे यौवन पर दहक रही थी. जैसे-तैसे करके उसने चारपाई को अंगीठी के पास खींचा और कटे पेड़ की तरह उसमें ढह गया.

मन्नी रातभर बेचैनी से करवटें बदलती रही. कहीं जाकर सुबह जब आंख लगी तो वह देर तक सोती रही. बाहर से उठते शोर से उसकी नींद उचट गयी और वह उठकर बैठ गयी. कोई और दिन होता तो वह ज़रूर बाहर जाकर देखती कि माजरा क्या है. उनींदी आंखें मलकर उसने देखा कि कई दिनों तक साधना में लीन रहा सूरज रात का सारा कोहरा निगल हौसले से हौले-हौले मुस्करा रहा है और उसकी मुलायम किरणों की गुनगुनी धूप से पूरा कमरा नहा उठा है. उसने महसूस किया कि उसका 'ज्वर' पूरी तरह उतर चुका है.

थोड़ी देर में मौसी भी आ गयी, ''कैसी तबियत है मन्नी?'' उन्होंने पास आकर उसकी नब्ज टटोलते हुए पूछा. प्रतिउत्तर में मन्नी मुस्करा दी. ''बस ऐसे ही ख़ुश रहा कर.'' फिर वे स्वयं ही बताने लगीं- ''बुरे लोगों का ऐसा ही हश्र होता है. वो मुआ टाल वाला.... शराब तो पीता ही था. नशे में दरवाज़ा बंद कर बाहर से कुंडी लगा दी. सुबह लोगों ने देखा मरा पड़ा था. शायद अंगीठी से निकली गैस से दम घुट गया.''

मन्नी कुछ नहीं बोली और चुपचाप आंगन में आकर अंगीठी सुलगाने लगी.

१११२-बी, सेक्टर ४१-बी,
चंडीगढ़-१६००३६.
फोनः ०१७२-३२५१२७५

**→← आमने-सामने**

# बड़े शौक़ से सुन रहा था ज़माना; हमीं सो गये दास्तां कहते-कहते

✍ कपिल कुमार

'कपिल, क्या कर रहे हो आजकल तुम?' ख़ुद मैंने ही अपने आप से सवाल किया तो मुझे हंसी आ गयी और पलटकर मैंने भी एक सवाल दाग़ दिया, 'कमाल है, क्या तुम नहीं जानते कि मैं क्या कर रहा हूं! तुम भी वही हो जो मैं हूं. मेरे हमसफ़र, हर पल, दिन-रात, मेरा साया बन कर मेरे साथ रहते हो. घूमते-फिरते हो, उठते-बैठते हो, सोते-जागते हो. बोलो, कुछ ग़लत कह रहा हूं मैं?'

'नहीं, बिल्कुल नहीं, फिर भी, मेरा सवाल अभी तक अपनी जगह खड़ा है.'

'लेकिन यह बात तो सब जानते हैं.'

'जानते होते तो तुम्हें एक लेखक या साहित्यकार क्यों न मान लेते!' मेरे अक्स ने सुप्रीम कोर्ट के एक जज की तरह अपना मत प्रकट कर दिया और एक सवाल उछाल दिया, 'बोलो, क्या कहते हो?'

'अरे भाई, लेखक तो वह हर आदमी है, जो कुछ लिखता है. भले ही वह कहीं छपता न हो. हर लेखक की हर रचना साहित्य का अंग होती है. वह एक मामूली ख़त भी हो सकता है. आज महात्मा गांधी के ख़तों की चर्चा है. जवाहरलाल नेहरू के ख़त भी चर्चित रहे हैं. ये ख़त मां-बच्चों के बीच, प्रेमी-प्रेमिका के बीच या फिर ख़ुद को ख़ुद ही लिखे हुए भी हो सकते हैं. हवाओं में उड़ता, परिंदा के पंखों की तरह फड़फड़ाता, हर शब्द साहित्य का हिस्सा होता है. और, यही बात अगर कोई नामचीन व्यक्ति कह दे तो उसे स्वीकार कर लिया जाता है. समाचारपत्र उसे बढ़ा-चढ़ाकर छाप देते हैं. टीवी चैनल भी बार-बार दिखाते हैं.'

'जैसा कि पिछले दिनों महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी के वार्षिक पुरस्कार वितरण समारोह में कवि-गीतकार-लेखक-निर्माता-निर्देशक, ऑस्कर-विजेता पद्‌भूषण श्री गुलज़ार ने कहा था.' मेरा अक्स तुरंत बोल उठा.

'हां.' मैंने कहा.

'लेकिन वह इस मुकाम तक आसानी से तो नहीं पहुंचे. बहुत पापड़ बेले हैं उन्होंने भी. आज उनके पास वह हर चीज़ है, जिसकी तमन्ना दिल में संजो कर न जाने कितने नौजवान मुंबई की धरती पर कदम रखते हैं. संघर्ष करते-करते कुछ तो अपनी मंजिल तक पहुंच जाते हैं और कुछ नाकामी का घूंट पीकर लौट जाते हैं.' मेरे अक्स ने कहा, 'तुम भी तो आइने में अपनी शक्ल देखकर यहां आ गये थे.'

'हां, बरसों पहले जब मैं जवान था, मेरे मन में भी एक अंकुर फूटा था. अभिनय के आकाश में अनेक सितारे चमक रहे थे. मैं भी सपनों की दुनिया में खो गया और बंबई (आज मुंबई) आने की योजना बनाने लगा.'

'फिर यह अभिनेता बनते-बनते लेखक बन जाना....!'

'लिखना तो मैंने स्कूल के दिनों में ही शुरू कर दिया था. रामायण, महाभारत, भूतनाथ, चंद्रकांता और न जो क्या-क्या....बहुत-सी किताबें पढ़ीं मैंने.' मैं अपने अतीत की स्मृतियों में डूब गया और मेरा अक्स प्रश्नभरी निगाहों से मुझे ताकने लगा. 'बच्चों की कहानियां और कविताएं पढ़ते-पढ़ते मैं भी बच्चों के लिए लिखने लगा. लेकिन तब मैं यह नहीं जानता था कि अख़बारों में या पत्रिकाओं में कोई रचना छपती कैसे है. तुकबंदी करने का शौक था सो पैरोडी लिखना आसान लगा. फिर मौलिक रचनाओं पर भी लेखनी चलने लगी. निम्नलिखित रचना किसकी है, यह तो मुझे याद नहीं, लेकिन इसमें कल्पना की उड़ान इतनी प्रभावशाली है कि आज तक मैं इसे भूल नहीं पाया :

'है सतजुग की एक कहानी फटा समंदर निकला पेड़,
उसके ऊपर चलती-फिरती लाखों सुंदर-सुंदर भेड़.
आयी मक्खी एक कहीं से उसी पेड़ पर बैठी जाय,
उड़कर पहुंची आसमान में ले पंखों में पेड़ दबाय.

*भगी पड़ गयी सुरग लोक में सारे देव गये घबराय,*
*है कोई ऐसौ आज सूरमा जो मक्खी से लेय बचाय.'*

बस, मैं भी कल्पना के पंख लगा कर उड़ने लगा. लिखता था और मन ही मन दोहराता था, फिर रट लेता था और फाड़ कर फेंक देता था. पिताजी नहीं चाहते थे कि मैं इन सब बातों में अपना वक़्त बर्बाद करूं. वे चाहते थे कि बड़ा होकर, पढ़-लिख कर मैं डिप्टी कलेक्टर बनूं. तब वह नहीं जानते थे कि मैं आगे चल कर लेखक-कवि बन जाऊंगा.

प्रारंभिक शिक्षा हाथरस में पूरी करने के बाद मैं अलीगढ़ आ गया. अलीगढ़ में मेरे एक पड़ोसी थे, हरिश्चंद्र 'सूर्य', जो लिखते भी थे और स्थानीय पत्र-पत्रिकाओं में छपते भी थे. उन्होंने मुझे इस दिशा में 'गाइड' किया और मैं भी छपने लगा. पहले-पहले मेरी कौन-सी रचना प्रकाशित हुई और किस पत्रिका में, यह तो मुझे याद नहीं, लेकिन पहला मनीऑर्डर तीन रुपए का. 'बाल सखा' मासिक से आया था, इतना मुझे आज तक याद है.

इन्हीं दिनों मैं रोशनलाल सुरीरवाला के संपर्क में आया. सुरीरवाला जी 'चोंच' नाम से कुंडलियां लिखा करते थे. वह शिक्षक थे और मैं छात्र. उन्होंने मेरी रचनाओं को जांचा-परखा और लिखते रहने के लिए हरी झंडी दिखा दी. उनकी लिखी एक कुंडली मुझे आज भी याद है :

*'रंग गोरा मुख गोल है फिर चेचक का ठाट,*
*क्या खोटा भगवान ने चक्की का यह पाट.*
*चक्की का यह पाट, तनिक भी नहीं पढ़ी है,*
*कड़वी प्रथम गिलोय दूसरे नीम चढ़ी है.*
*कहे 'चोच' चिचियाय, यही पत्नी शायर की,*
*हुई किरकिरी दगरे में डनलप टायर की.'*

कुंडलिया शास्त्र के अनुसार यह कुंडलिया अशुद्ध है. आदि और अंत के शब्द भिन्न हैं और दूसरे रोला की दूसरी पंक्ति में मात्रा दोष है. किंतु तब मुझे इस बात का ज्ञान नहीं था सो मैं भी उनकी संगत में वैसी ही रंगत ढालने लगा. बाल-पत्रिकाओं के साथ-साथ मैं आगरा से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'नोक झोंक' में भी छपने लगा.

अलीगढ़ में पढ़ाई करते वक़्त मैं श्री गोपालदास 'नीरज' के संपर्क में आया और मन ही मन उन्हें गुरू मान कर एकलव्य की तरह काव्य-रचना करने लगा. तब मैं अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में बी.कॉम की पढ़ाई कर रहा था. बी. कॉम. के बाद पहले तो मैंने कानून पढ़ने के बारे में सोचा, फिर एम.ए. (अर्थशास्त्र) में दाखिला ले लिया, किंतु पढ़ाई अधूरी छोड़कर दिल्ली आ गया और नौकरी की तलाश करने लगा. इन दिनों मैंने फ़िल्मी दुनिया से मुंह फेर लिया था और चाहता था कि सपनों की नगरी में कदम रखने से पहले कुछ धन अर्जित कर लिया जाये.

एक दिन उत्तर रेलवे में असिस्टंट स्टेशन मास्टर की नौकरी के लिए विज्ञापन निकला तो मैंने प्रार्थनापत्र भेज दिया. हज़ारों प्रार्थनापत्र पहुंचे, लेकिन क़िस्मत ने साथ दिया सो मुझे इंटरव्यू के बाद ट्रेनिंग के लिए चुन लिया गया. ट्रेनिंग के बाद एक बार फिर परीक्षा देनी पड़ी और एक छोटे स्टेशन पर नियुक्त कर दिया गया, लेकिन वहां मन न लगा. खाना भी वक़्त पर नहीं मिल रहा था. कहा जाता है कि 'भूखे भजन न हो गोपाला, यह ले अपनी कंठी-माला.' सो इस्तीफ़ा दे दिया और डिपॉजिट से हाथ धो बैठा.

फिर मध्य रेलवे से काल आयी और मुंबई पहुंच गया. गुड्स क्लर्की करते-करते किसी तरह डेढ़ साल का वक़्त गुज़ारा और एक दिन यह नौकरी भी छोड़ दी. लेकिन इस बीच स्वतंत्र पत्रकार के रूप में मेरे पैर जम चुके थे और इतनी कमाई होने लगी थी जिससे मैं किसी गेस्ट हाउस में रह सकूं और दोनों वक़्त रोटी भी खा लूं.'

'अजीब घनचक्कर आदमी हो तुम!' मेरा अक्स अचानक ही बोल उठा, 'कभी कुछ और फिर कभी कुछ. कहीं एक जगह ठहरने का मन नहीं हुआ तुम्हारा?'

'मन तो किसी भूत की तरह उल्टे पैरों भटक रहा था.' कहते-कहते मैं एक बार फिर सोच में डूब गया, 'सुबह जल्दी उठना, नाश्ता करना और संघर्ष के लिए निकल जाना. लंच के लिए लौटना और एक बार फिर धक्के खाते फिरना. घूमते-घूमते रचना की योजना बनाना और रात भर लिखते रहना. धीरे-धीरे मेरी मेहनत रंग लायी और एक दिन वह आया जब ए.एच.व्हीलर के बुक स्टाल्स पर सजी आठ-दस हिंदी

पत्रिकाओं में से तीन-चार में कपिल की कोई न

कोई रचना होती थी.'

'फिर यह फोटोग्राफ़ी? तुम फोटोग्राफर कैसे बन गये?'

'कहते हैं आवश्यकता आविष्कार की जननी है.' मैंने अतीत के पन्नों को उलटना शुरू किया, 'मुझे 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' के फ़िल्मी पृष्ठ लिखने का अवसर मिला तो चित्रों की ज़रूरत भी हुई. पहले तो मैं कलाकारों से उनके चित्र मांगता रहा और रचनाओं के साथ भेजता रहा, लेकिन इस तरह वक़्त बहुत बर्बाद होता था. कभी कोई घर बुलाता, कभी स्टूडियो में और कभी किसी फोटोग्राफ़र के पास भेज देता. वक़्त की बर्बादी के साथ-साथ परेशानी भी कम न होती थी. सो एक दिन कोडक का फोल्डिंग कैमरा ख़रीद लिया और लाट के लिए बल्ब लगा कर फ़ोटो खींचने लगा.'

'सबसे पहले किस पर बटन दबाया?' कहते-कहते मेरा अक्स थोड़ा मुस्कराया.

'कुछ मत पूछो. उस दिन श्री वी. शांताराम के साथ मेरा अपाइंटमेंट था. बड़ी मुश्किल से वक़्त दिया था उन्होंने. वह भी केवल पंद्रह-बीस मिनट. दोपहर को ठीक दो बजे मैं वहां राजकमल स्टूडियो में पहुंच गया. उनके प्राइवेट रूम का बड़ा ऊंचा दरवाज़ा खुला और मैं अंदर घुस गया. फ़िल्मी दुनिया की एक महान हस्ती मेरी आंखों के सामने थी सो भीतर ही भीतर मैं थोड़ा अस्थिर था. अन्ना साहब ने मुझे बैठने का इशारा किया और मैं अपना थैला समेट कर कुर्सी पर बैठ गया.'

'तुम्हारा नाम कपिल है न.' अन्ना साहब ने कहा, 'कपिल दिल्ली वाला.'

'जी हां.' मैं बोला, 'जिस पत्र के लिए मैं काम करता हूं. वह दिल्ली से निकलता है.' कहते-कहते 'साप्ताहिक हिंदुस्तान की प्रति मैंने उनके सामने रख दी. फिर बातें होती रहीं और वक़्त घड़ी की सुइयों के साथ फिसलता रहा. कब चार बज गये हम दोनों को ही पता न चला. तभी पंडित भरत व्यास का आगमन हुआ और अन्ना साहब बोले, 'तुम्हारा काम हो गया. अब तुम जाओ.'

'नहीं, अभी एक काम बाकी है.' मैंने कहा और थैले में से कैमरा बाहर निकाल लिया फिर फ्लैश बल्ब लगा कर मैं बोला, 'आपका फ़ोटो खींचना है.' पहले तो अन्ना साहब थोड़े अचकचा'', फिर कुछ सोचकर तैयार हो गये और मैंने 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' के साथ उनका फ़ोटो खींच लिया.

इस तरह मैं लेखक, कवि, पत्रकार होने के साथ एक फ़ोटोग्राफ़र भी बन गया. न कोई ट्रेनिंग और न कोई शिक्षा, फिर भी कुछ ही दिनों में एक फ़ोटोग्राफ़र के रूप में मेरी एक ख़ास जगह बन गयी. दिल्ली में जहां पहले रंगीन पृष्ठ के लिए ब्लॉक छपा करते थे, वहां मेरी ट्रांसपरेंसियां छपने लगीं.'साप्ताहिक हिंदुस्तान' के मेरे तीन फ़िल्मी पृष्ठों में से एक रंगीन हो गया, जिसे पाठक काट-काटकर जमा करने लगे. इसका असर सर्कुलेशन पर भी पड़ा. दिल्ली की मासिक पत्रिकाओं ने भी मुझे स्वीकर कर लिया. मुंबई में 'माधुरी' में भी मैं छपने लगा.

'लेकिन साहित्यिक गतिविधियों का क्या हुआ?' अचानक ही मुझे मेरे अक्स की आवाज़ सुनायी दी.

'वे भी चलती रहीं. यह बात और है कि सिने-पत्रकार और फोटोग्राफर ने मेरे साहित्यकार की आंखों पर कुछ समय के लिए पट्टी बांध दी और सिने जगत की चकाचौंध को कवर करने के लिए मुझे दो असिस्टेंट भी रखने पड़े.'

'तो जनाब, क्या-क्या लिखा आपने उन दिनों?'

'मेरे तीन उपन्यास छपे.'

'उपन्यास!' मेरा अक्स चौंक कर बोला.

'हां.' मैंने कहा, 'उपन्यासकार श्री गुलशन नंदा के संपर्क में आया तो उपन्यास लिखने लगा. 'काजल की रेखा', 'बुरा-भला' और 'आवेश' उपन्यास प्रकाशित हुए. 'बुरा भला' पर तो फ़िल्म भी बनते-बनते रह गयी.'

'फिर?'

'फिर क्या. फिल्मों में भी लेखनी चलने लगी. बासु भट्टाचार्य की फ़िल्म 'अनुभव' में संवाद-लेखक के रूप में सागर सरहदी के साथ मेरा नाम भी है. 'घटना' के लिए पटकथा और संवाद लिखे. गीता दत्त का गाया हुआ 'अनुभव' फ़िल्म का गीत 'कोई चुपके से आके' काफ़ी लोकप्रिय हुआ. बासु की दूसरी फ़िल्म 'आविष्कार' का गीत 'हंसने की चाह ने कितना मुझे रुलाया है, कोई हमदर्द नहीं दर्द मेरा साया है', पिछले तीन दशकों से बज रहा है. यह गीत मन्ना डे ने गाया है और मेरी पहचान बन गया है.'

'हाल ही में एक लंबे अंतराल के बाद आपकी एक पुस्तक प्रकाशित हुई है. 'कहें कपिल कविराय', जो हास्य-व्यंग्य की कुंडलियों का संग्रह है.' मेरे अक्स ने कहा, 'इस बीच कौन-सा भाड़ झोंका?'

'अरे भाई, नाराज़ क्यों होते हो! एक लंबी कहानी है इस अंतराल की. तरह-तरह के तजुर्बों से भरे हुए हैं ये साल. क्या-क्या नहीं किया मैंने इस पीरियड में. घुड़दौड़ के मैदान में घोड़ों पर दांव लगाये. टिप्स की बुलेटिन छापी. एक घोड़ा ख़रीदा. विज्ञापन एजेंसी चलायी. विज्ञापन फ़िल्म बनायी. एक फिल्म शुरू की. 'सपने महक उठे' जो अधूरी रह गयी. एक लघु फ़िल्म बनायी 'प्यार की बूंद' जो वितरक ने चालाकी से हड़प ली. 'तीसरा पत्थर' चौदह रील बन कर भी प्रदर्शित न हो सकी. शेयर बाज़ार में भी भाग्य आजमाया. इसका परिणाम यह हुआ कि लेखक के रूप में जो नाम अर्जित किया था, वह लुप्त हो गया.'

'लेकिन जिस सपने को साकार कनरे के लिए इस महानगरी में कदम रखा था. उसका क्या हुआ?'

'बड़ी देर के बाद तुम्हें इसकी याद आयी.' अतीत को कुरेदते हुए मैंने कहा, '१९६५ में जब भारत और पाकिस्तान के बीच युद्ध छिड़ा हुआ था तब मैंने छत्तीसगढ़ी बोली की पहली फ़िल्म 'कही देबे संदेस' में नायक की भूमिका निभायी थी. काका हाथरसी के दत्तक पुत्र डॉ. लक्ष्मीनारायण गर्ग की फ़िल्म 'जमुना किनारे' में, जो ब्रजभाषा में बनी थी, मैंने खलनायक की भूमिका निभायी.

"अब अचानक यह परिवर्तन. लिखना, लिखना बस लिखते रहना. महीने भर में पचास-साठ कुंडलियां प्रकाशित होती हैं.' मेरा अक्स कुछ और कहता उसके पहले ही मैं बोल उठा. 'तुम सोच रहे होगे कि यह चमत्कार कैसे हो गया. लेकिन यह बात तो तुम भी जानते हो. हम दोनों ने मिलकर ही तो वह सपना देखा था. एक अदृश्य शक्ति कह रही थी : कपिल, लिख. जितना लिख सके, लिख. तेरा खोया हुआ नाम तुझे लिखने से ही वापस मिलेगा. अगले दिन यही बात एक महिला ज्योतिषी ने भी मुझसे कही. उन दिनों मैं भी ज्योतिष की शिक्षा ले रहा था. पहले तो मैंने यह बात टाल दी क्योंकि सपना तो केवल सपना ही होता है. फिर एक दिन अचानक ही 'हमारा महानगर' के कार्यकारी संपादक श्री सुधांशु शेखर ने लिखने का अवसर दिया तो मैं चौंक उठा. क्रिकेट का विश्व कप शुरू हो रहा था और मुझे हर दिन दो कुंडलियां लिखनी थीं. महिला ज्योतिषी की बात भी मुझे याद आ गयी. क्रिकेट एक नीरस विषय है, इसके बावजूद मैंने हर दिन मैच देखे और दो महीनों तक लिखता रहा और अब पिछले दो बरस से हर विषय पर लिख रहा हूं.'

'लेकिन कुंडलिया ही क्यों?' मेरा अक्स पूछ उठा.

'कुंडलियां तो मैं स्कूल के दिनों में भी लिखता था. मुंबई आकर भी लिखता रहा, लेकिन हर दिन लिखना 'हमारा महानगर' में लिखने के बाद ही हुआ है. 'जमुना किनारे' की शूटिंग के दौरान मैंने कुंडलियां विधा के शास्त्र की बात काकाजी के साथ छेड़ी तो उन्होंने कह दिया, 'लल्ला, तू लिखतौ रह. सास्त्रन की बातन कूं भूल जा.' काका हाथरसी के साथ मेरा बड़ा ही नज़दीकी रिश्ता है क्योंकि मैं भी हाथरस का हूं और यह हाथरस की मिट्टी का ही प्रताप है कि मैं भी कुंडलियाकार बन गया हूं और गिरधर कविराय के कदमों से कदम मिलाते-मिलाते कपिल कविराय बन गया हूं. 'कहें कपिल कविराय' का पहला भाग पाठकों के सामने आ गया है और दूसरा भाग तैयार हो रहा है.'

'इस पहले भाग की तो बहुत प्रशंसा हो रही है.' मेरा अक्स भावविभोर होकर बोला, 'तुम क्या कहते हो?'

'मैं क्या कह सकता हूं. इस संबंध में तो पाठक और समीक्षक ही कुछ कह सकते हैं. मैं तो आश्चर्यचकित हूं और उस महिला ज्योतिषी की भविष्यवाणी को याद कर रहा हूं. समीक्षक कह रहे हैं कि मैंने कुंडलिया विधा को जीवनदान दिया है और मैं कहना चाहता हूं कि कपिल कविराय ने कपिल कुमार को जीवनदान दे दिया है, जिसके लिए मैं पाठकों, समीक्षकों, आलोचकों, पत्र-पत्रिकाओं के संपादकों और मित्रों का अत्यंत आभारी हूं.'

'इसका मतलब यह हुआ कि तुमको अपनी खोयी हुई ज़मीन वापस मिल गयी है,' कहते हुए मेरा अक्स ग़ायब हो गया. और मैं बैठा हुआ सोच रहा हूं कि क्या सचमुच मेरी ज़मीन मेरी मुट्ठी में आ गयी है. क्या मेरा सपना सच के आसमान को छू रहा है!

*४ गंगा भवन, २४वां रास्ता,*
*बांद्रा (प.), मुंबई- ४०० ०५०.*
*फ़ोन : ९८२११३५५१६*

# 'सारा संघर्ष मैंने अपने भीतर ही सहा है!'

✍ भारत भूषण

*( भारत भूषण का नाम न मैंने उस पीढ़ी में लिया न इस पीढ़ी में, सो इसलिए कि वह स्वयं ही एक पीढ़ी हैं. शब्दों का चयन, कहने की भंगिमा, भावों की सुकुमारता सभी बातें भारत भूषण की दूसरों से अलग हैं. कालजयी साहित्यकार भवानी प्रसाद मिश्र जी की ये पंक्तियां भारत भूषण के संपूर्ण व्यक्तित्व पर प्रकाश डालती हैं, 'गीत ऋषि भारत भूषण गीत का पर्याय ही हैं.' 'कथाबिंब' के लिए कवियित्री मधु प्रसाद से एक विशेष बातचीत.)*

**• मां भारती की इस चिर वासंती बयार में, झूमते हुए उद्यान में आज अनगिनत रंगबिरंगे फूल महक रहे हैं. ऐसे रसवंती उद्यान में आप शिखरस्थ फूल हैं. मैं आपके गीतों के माधुर्य एवं लावण्य से बचपन से परिचित रही हूं, प्रशंसक रही हूं. आपका हाल में प्रकाशित गीत संग्रह 'मेरे चुनिंदा गीत' आपकी गीत यात्रा को बहुत सुरुचिपूर्ण ढंग से समेट लाया है. आपकी गीत यात्रा के विषय में जानने से पूर्व आपकी जीवनयात्रा, परिवार, प्रकृति, परिवेश पर थोड़ी चर्चा करें.**

मैं एक निर्धन परिवार में पैदा हुआ था. पिता एक बड़े सर्राफ़ के यहां मुनीम थे. मां और मौसी दोनों हिंदी मिडिल पास थीं. मौसी दिल्ली में अध्यापिका थीं. मां मेरठ में ही घर पर रहीं. मां राजदेवी, शाम को रामचरित मानस गा-गा कर पढ़ा करती थीं. आसपास की तीन चार महिलाएं भी आ बैठती थीं. मेरा कंठ स्वर मां की ही देन है. उन्हीं दिनों मैंने 'प्रेमसागर', 'सुख सागर' भी आधे-आधे पढ़े थे. 'चंद्रकांता' और 'सैक्शटन ब्लैक सिरीज' की कई पुस्तकें पढ़ीं. हिंदी पठन-पठन में मेरी रुचि बढ़ती गयी. मेरा अक्षर ज्ञान भी बहुत बढ़ गया. नवीं कक्षा तक मैंने अनेक उपन्यास पढ़ लिये थे. तब की पढ़ने की आदत आज तक है. पिता क्रोधी स्वभाव के थे. कभी-कभी मां को पीट भी देते थे. तब मैं छिप कर रोता था. १९४२ के आंदोलन में विद्यार्थियों के जुलूस और हड़ताल भी थोड़े याद हैं. मेरठ में अपने पिता के कंधे पर चढ़ कर मैंने एक बार सुभाष चंद्र बोस को देखा है. हिसाब में मैं बहुत कमज़ोर था, पिटाई भी होती थी. इंटर करने के बाद एक छोटी-सी ट्रेनिंग भी की. इसके बाद मैं मेरठ से २०-२५ मील दूर मवाना में सहायक अध्यापक हो गया. वहां पुस्तकालय से मैंने रीतिकाल के घनाक्षरी, सवैये बहुत गा-गा कर पढ़े. धीरे-धीरे अपनी पंक्तियां जोड़ने लगा. यहीं एक प्रेम संबंध भी मुझसे जुड़ गया. तब मैं २० वर्ष का था. गांव के एक कवि ने मुझे छंद मात्रा का ज्ञान कराया था.

**• आपने गीत-कविता को मंच पर सम्मानपूर्वक शोभायित किया है, भलीभांति प्रतिष्ठित एवं सम्मानित किया है. मंच पर आपकी प्रस्तुतीकरण की शैली विशिष्ट रही है. आपके समय में प्रायः कवि-सम्मेलन हुआ ही करते थे. कुछ अनुभव बतायें मंच के एवं समकालीन मंच कवि बंधुओं के.**

मंच पर उन दिनों रंग जी, देवराज दिनेश, रामावतार त्यागी, पं. गोपाल प्रसाद व्यास, वीरेंद्र मिश्र आदि होते थे. मैं नया था, छोटा था अतः अधिकतर चुप रहता था. दिनेश और त्यागी जी, व्यास जी बहुत प्रेम करते थे. दिल्ली जाकर ५० रु. मिलते थे. १९५६ में मैं लाल किले के सम्मेलन का प्रिय कवि था.

**• आज के इस आर्थिक युग में जहां धन का स्मरण गीत और कविता से पहले किया जाता है, आपने अपने ऊपर इस प्रकार का कोई आक्षेप नहीं लगने दिया. कैसे बचा पाये आप अपने आपको इस विसंगति से?**

पहले धन तो बहुत कम मिलता था. अब तो हज़ारों में मिलने लगा है. मैं धन के लिए, कभी बहुत आकर्षित

नहीं रहा. संतोष मेरी आदत है. मुझे अच्छा गीत बन जाये तो वही मेरा पारिश्रमिक हो जाता है. वैसे अब इधर-उधर की भी सोचने लगा हूं. साथी कवियों को देखता हूं तो विचार मग्न हो जाता हूं. मैं मध्यम वर्ग के परिवार में संतुष्ट हूं. यह सोचता रहता हूं कि जो मुझसे भी कम आयवाले हैं वे कैसे जीते हैं लेकिन जीते तो हैं ही. घर है, बिजली और पंखे हैं, कूलर है, रोटी कपड़ा सभी है और क्या चाहिए यह भावना मुझे संतुष्ट रखती है. सारी इच्छाएं बढ़ाते रहें तो चैन कहां मिलेगा?

**• आपने कहीं कहा था, 'जब मैं लाल किले के कवि सम्मेलन से लौटता हूं और शारदा को घर पर झाड़ू लगाते पाता हूं तो अपने आपको कितना छोटा महसूस करता हूं, बता नहीं सकता.' कविता के भव्य आकाश पर प्रतिष्ठित होना और गार्हस्थिक सौमनस्य बनाये रखना अपने आप में पूर्णता है जो भारत भूषण की विशेषता रही है. शारदा हर रूप में आपके साथ रही हैं. यह श्री संपन्न लोकयात्रा एक विशेष उपलब्धि है. ये किनारे कैसे मिले रहे, बतायें.**

शारदा मेरा कर्तव्य है, प्रेम मेरा जीवन है. निम्न श्रेणी के घर को मध्यम वर्ग तक लाना था. इसके लिए शारदा ने तन-मन से बहुत परिश्रम किया. मैंने केवल पैसा लाकर उन्हें दिया. शेष उन्होंने संभाला. दो किनारों के बिना नदी की कल्पना की ही नहीं जा सकती. नहीं मिल कर भी साथ रहना होता है. तभी गतिशीलता बनी रहती है.

**• आपके मीठे, मधुर गीतों में आत्मदर्शन होता है. आपके गीतों की शाश्वत भावनात्मक एवं अलौकिक प्रेम की अनुभूतियों में मन बार-बार अवगाहन करना चाहता है. मां शारदा की विशिष्ट कृपा है आप पर. भारत भूषण को गीत का पर्याय बनने में क्या-क्या झेलना पड़ा ? क्या-क्या रूकावटें रहीं?**

जीवन में मुझे गीत लिखने के लिए अपने मन में ही बंद रहना पड़ा. सब कुछ मैंने अपने प्राणों में सहा है. किसी की याद में गली-गली रोया हूं. लेकिन शाम को बच्चों के लिए कुछ मिठाई लेकर लौटा हूं. सारा संघर्ष मैंने अपने भीतर ही सहा है और वही गीत बनता गया है. भीतर नहीं सहकर बाहर प्रकट किया होता तो घर बिखर जाता, परिवार टूट जाता. सहा सभी कुछ अकेले-अकेले. एक दो आत्मीय मित्रों को पता था केवल.

**• 'राम की जल समाधि', जय शंकर प्रसाद की 'प्रलय की छाया', निराला की 'सरोज स्मृति' और 'राम की शक्ति पूजा', मुक्ति बोध की 'अंधेरे में' तथा अज्ञेय की 'असाध्य वीणा' आदि हिंदी की लंबी कथात्मक कविताओं की परंपरा में अग्रणी हैं. राम का अंतर्दाह, अपराध बोध, मर्मांतक ग्लानि, दाहक करुणा आपने पूर्व दीप्ति शैली के माध्यम से बहुत सहजता से प्रस्तुत की है. प्रणय से प्रणव की यह यात्रा सरल तो नहीं रही होगी. इस कविता की प्रेरणा का क्या स्रोत रहा?**

'राम की जल समाधि' का मूल विचार यह रहा कि मैं बहुधा यह सोचा करता था कि यदि किसी को यह लगे कि कल तू नहीं रहेगा तो उसका मन क्या-क्या सोचेगा. यही सोचते हुए अचानक वाल्मीकि के अनुसार राम की स्थिति मन में आयी. प्रश्न सुलझ गया और मैं स्वयं राम हो गया. फिर रह-रह कर सारी पिछली यादें प्राणों में जगती चली गयीं. जितना समय इस रचना में लगा मैं और मेरा प्राण सरयू पर व्याकुल राम ही रहा.

**• आपकी जीवन यात्रा की विषमताएं एवं विसंगतियां आपके गीतों में गहराई से उतरी हैं. फिर भी लालित्य एवं माधुर्य निरंतर बना रहा. इस पर कुछ प्रकाश डालें ताकि सहज ही हताश एवं निराश हो जानेवाली युवा पीढ़ी कुछ सीख ले सके.**

जीवन में विषमताओं और विसंगतियों की लपटों को भीतर ही भीतर सहना चाहिए. बाहर वे घर का क्लेश और विरोध बन जायेंगी. बाहर आनंदित रहो सभी के साथ, जो कुछ सहना है, भीतर सहो. बाहर लालित्य और मधुर बने रहो. यह मेरी जीवन शैली है. मेरी मां का जीवन भी ऐसे ही रहा है. वही भावना मेरे मन में उतर आयी है.

**• कविता को जानने, समझने और अनुभूत करनेवाले व्यक्ति अब गिनती के ही रह गये हैं. पाश्चात्य संस्कृति का अंधानुकरण करनेवाली दिग्भ्रमित युवा पीढ़ी के विषय में कुछ कहें. शायद उनकी चेतना एवं सकारात्मक सोच को एक नयी दिशा मिले.**

हमने अपने बालकों को अपनी पीढ़ी की शिक्षा दी ही नहीं. इसलिए ये सब पाश्चात्य के लिए समर्पित हो गये. एक को देख कर दूसरा, फिर तीसरा सब इसी राह पर चल निकले.

सारा दोष माता-पिता की पीढ़ी का है. टी.वी. ने और प्रेरित प्रभावित किया है. यह तो पुनर्जन्म का सिद्धांत है. शरीर मरता है. आत्मा फिर-फिर जन्म लेती है. पूरी सृष्टि की यही प्रक्रिया है.

**• 'मेरे चुनिंदा गीत' आपके बहुत सारे मीठे मादक गीतों को संजो कर लाया है. आपका उत्साह अनुकरणीय है. 'कल सूरज बन कर जागूंगा उदयाचल में, मुझे पहचान लेना', इस जीवंतता का क्या रहस्य है?**

अब थक चला हूं. लिखना बहुत कम हो गया है. अब कुछ भी मन का पढ़ना चल रहा है. अब गीत के लिए ध्यान केंद्रित कम होता है. आयु का प्रभाव भी है. मन भक्ति और विरक्ति की ओर मुड़ रहा है. पिछले कुछ वर्षों से मैं कुछ श्रेष्ठ संतों के आशीर्वाद पाकर भी बहुत प्रसन्न और संतुष्ट हूं.

**• वैसे तो आपके गीतों की सरलता, तरलता, प्रगाढ़ता एवं मधुरता के सम्मुख प्रशंसापत्र, मानद उपाधियां, सम्मान आदि बौने एवं निरर्थक प्रतीत होते हैं. फिर भी युवा पीढ़ी में कुछ उत्साह संचारित होगा. क्या कहेंगे?**

उपाधियां, प्रशंसा, सम्मान आदि हमारी आपकी साधना का मधुर फल हैं. इनसे अहंकार नहीं होना चाहिए यह बहुत आवश्यक है. अहंकार से मनुष्य पथ भ्रष्ट हो जाता है.

**• आयु के इस मोड़ पर जब आप पीछे मुड़कर देखते हैं तो सबसे अधिक क्या याद आता है - मंच, मित्र, उपलब्धियां, विसंगतियां?**

अब क्या-क्या याद करूं. अतीत तो कभी-कभी ध्यान में कौंधता तो है. किसी सपने की तरह फिर शीघ्र कहीं विलीन हो जाता है. साथ के कई अभिन्न मित्र चले गये हैं. मैं जब भी उन्हें याद करता हूं तो मन सुख-दुख का मिला जुला-सा मिश्रण हो जाता है.

**• अपनी काव्य यात्रा का कोई विशेष प्रसंग बताना चाहेंगे?**

यात्रा का कोई अदभुत प्रसंग इस समय याद नहीं आ रहा है.

**• युवा कवियों, गीतकारों से क्या कहना चाहेंगे?**

युवा कवियों को आशीष. कहना यही है कि पुराने और नये अच्छे-अच्छे कवियों को पढ़ें, मनन करें. मंच के सम्मान से प्रभावित न हों, मंचीय अपमान से दुखी न हों. अपनी साधना में लगे रहें. गंभीर और साहित्यिक ढंग से जो कुछ कहना हो कहें. यह सोचकर नहीं लिखें कि जनता ये पसंद करेगी या नहीं. जनता की नहीं अपने मन की संतुष्टि की चाह बनाये रखें.

**• आपकी इन सुंदर पंक्तियों के साथ आप से विदा ले रही हूं.**

*'आधी उमर करके धुआं*
*यह तो कहो किसके हुए?*
*परिवार के या प्यार के*
*या गीत के या देश के?*

*९५०, ब्रह्मपुरी, मेरठ (उ.प्र.)*

***श्रीमती मधु प्रसाद***
*२९, गोकुलधाम सोसायटी,*
*कलोल-महेसाणा, राजपथ, चांदखेड़ा,*
*अहमदाबाद-३८२४२४*

---

कविता

## मैं जैसा हूं !

लक्ष्मीकांत पांडेय

*मैं छोटा ही था*
*लेकिन आपने मुझे छोटा कहकर*
*कुछ ज़्यादा ही छोटा कर दिया.*
*मैं बड़ा नहीं था*
*लेकिन आपने मुझे बड़ा कहकर*
*कुछ और बड़ा कर दिया.*
*हुज़ूर! मैं आपसे यह नहीं कह रहा हूं*
*कि मुझे आप जितना बड़ा मैं नहीं हूं*
*उतना बड़ा कहिए,*
*लेकिन यह भी गुजारिश है कि*
*मुझे जितना छोटा मैं नहीं हूं*
*उतना छोटा बयान मत कीजिए,*
*याद रखिए*
*मुझे बड़ा कहने से*
*न आप छोटे हो जायेंगे*
*और न छोटा कहने से बड़े,*
*इसीलिए मैं जैसा हूं*
*वैसा ही कहिए*
*और उसी रूप में मुझे स्वीकार कीजिए.*

**सी-३४ केंद्रीय विहार, सेक्टर-३८**
**नेरुल, नवी मुंबई-४०० ७०६**

**बाइस्कोप**

# उर्दू की मशहूर लेखिका - 'रफ़िया मसूल उल-अमीन'

✍ **सविता बजाज**

*(साहित्य और फ़िल्म का चोली दामन का साथ है. हमारे विशेष अनुरोध पर जानी मानी फ़िल्म, टी.वी., मंच कलाकारा व पत्रकार सुश्री सविता बजाज 'कथाबिंब' के लिए चलचित्र जगत से संबद्ध साहित्यकारों के साथ बिताये क्षणों को संस्मरण के रूप में प्रस्तुत कर रही हैं. अगले अंकों में पढ़िए गुलज़ार, सुधाकर शर्मा आदि के बारे में.)*

हैदराबाद की मुस्लिम सभ्यता पर आधारित टी. वी. सीरियल 'फरमान' की कहानी, संवाद, पटकथा, गीत सब कुछ रफ़िया जी ने लिखे थे. रफ़िया जी नाम और पेशे से एक मशहूर कहानीकार हैं. सीरियल के निर्माता स्व. गुल आनंद थे. मेरी भूमिका सीरियल में नौकरानी शमशाद की थी. लगभग फ़िल्म 'निशांत' में पोचम्मा जैसी. मुझ पर नौकरानी का लेबल लग चुका था. कमाई का ज़रिया तो था लेकिन ऐसी भूमिकाओं से मैं बेज़ार थी. छुटकारा पाना चाहती थी. पता नहीं निर्देशक को 'न' नहीं कह सकी. बावजूद इसके कि जानती थी निर्देशक के चहेते कलाकारों पर ही कैमरा रहेगा. शायद उन दिनों मुझ पर रफ़िया जी से मिलने की धुन सवार थी. क्योंकि उनके बारे में बहुत कुछ सुना था. मसलन लेखन के अलावा उनमें और भी बहुत ख़ूबियां थीं. पेंटिंग, मूर्तिकला, सितार, संगीत वगैरह में भी ख़ूब ख्याति अर्जित की थी उन्होंने और ढेरों पुरस्कार प्राप्त कर चुकी थीं.

हैदराबाद के बंजारा हिल इलाके में सब कलाकारों को ठहराया गया था. जब रफ़िया जी से मिली तो मैं बस देखती ही रह गयी. दुबली-पतली क़द-काठी, हरी स्याह आंखें, ज़मी को छूती लंबे बालों की चोटी. ग़ज़ब का हुस्न पाया था रफ़िया जी ने. उनके पति से तो पहले की पहचान थी जब मैं दिल्ली में आल इंडिया रेडियो पर प्रोग्राम करती थी और अमीन साहब वहां डायरेक्टर जनरल थे. रफ़िया जी और मेरी दोस्ती ऐसी हुई मानों बरसों बाद दो बहनें बिछड़ी हुई मिली हों. एक दिन निर्देशक ने अपने पसंदीदा कलाकारों से कहा ज़रा सविता से बचकर रहना, अभिनय में तुम्हारी छुट्टी कर देगी. रफ़िया आपा को और मुझे यह बात बहुत बुरी लगी. मेरे समय की भी बहुत बर्बादी हो रही थी. न निर्देशक मुझसे काम लेता, न वापिस बंबई जाने देता, बस चौबीसों बार मेकअप

करवाकर बैठने को बोलता. आपा कहतीं - 'सविता, भारत में ही नहीं, पूरे विश्व में औरतों पर अत्याचार होता है. कारण तो बहुतेरे होते हैं.' कभी-कभी निर्देशक मुझे पर चिल्लाता, बिना कारण, फिर थोड़ी देर में कहता- 'माई मुझे माफ़ कर दो. मुझे भी अपनी तरह सिखाओ कि ग़ुस्से को कैसे काबू करूं.' तो मैं उन्हें विपाशना मैडीटेशन करने की सलाह देती जो उन्होंने कभी नहीं किया. रफ़िया आपा सब देख रही थीं, समझ रही थीं. ख़ूब हंसती कहतीं - 'मर्दों को समझना बहुत कठिन है.'

एक दिन मैंने रफ़िया आपा से जीभर कर बातें कीं. जहां शूटिंग हो रही थी. वहां का नज़ारा बड़ा मोहक था. नदी के किनारे महल था और वहां एक नाव बंधी थी. बस हम दोनों उस नाव में बैठ गये.

मैंने कहा, 'यहां हैदराबाद में तो बिना बुर्का पहने बाहर निकलना अपराध माना जाता है और आप हमारी तरह घूम रही हैं. आपने प्रेम विवाह किया. तो क्या समाज से बग़ावत की?'

'अरे सवि मैं इस मामले में बहुत ही ख़ुशनसीब हूं, क्योंकि पिताजी पुलिस में डी.आई.जी. थे और उन्होंने मुझे अच्छे से पाला-पोसा ख़ूब पढ़ाई करवायी और मेरी सारी इच्छाओं को पूरा किया. नसीब से पति भी खुले

विचारोंवाला मिला जिन्होंने मेरे हर काम को सराहा बल्कि उसमें मेरी मदद भी की. हैदराबाद की छाप इसलिए मुझ पर नहीं पड़ी. क्योंकि पहले पिताजी का तबादला होता रहता था और बाद में पति का. देश के अन्य शहरों के रीति-रिवाजों ने मुझे काफ़ी प्रभावित किया, बहुत कुछ सीखा. रेडियो और टी.वी. के लिए बीसियों ड्रामे लिखे. तीन सौ के करीब कहानियां लिखीं, जो सब भाषाओं में छपीं.

'आप तो अक्सर पति के साथ दुनियां घूमती हैं, वहां की औरतों के बारे में बताइए न?'

'पूरे विश्व में औरतों की स्थिति एक सी है. सभी जगह मर्दों का राज है. आपकी और मेरी सोच एक सी है कि यह दुनिया मर्दों की है. सभी जगह मर्दों का बोलबाला है.'

'मर्दों को सही राह पर लाने का कोई गुरूमंत्र?'

रफ़िया आपा जी भर कर हंसी फिर बोलीं- 'यहीं पर देख लो न, मर्द आपकी प्रतिभा से जलते हैं, आपके अच्छे मीठे, खरे स्वभाव से खार खाते हैं. सारी दुनिया की औरतों को एक ही स्वर में आवाज़ उठानी होगी. औरतें मर्द से कहीं किसी भी मामले में कमज़ोर नहीं, वे इस विषय पर सोचें तो सही. हां यह भी सत्य है औरत औरत की ही आवाज़ दबा देगी. अपने स्वार्थ के लिए.'

'फरमान की नायिका तो पति से मार खाती है. वह बग़ावत क्यों नहीं करती?'

रफ़िया जी चुप थीं फिर धीरे धीरे बोलीं- 'देखना, यह है कि निर्देशक इस समस्या का हल कैसे निकालता है.'

निर्देशक ने भले से 'फरमान' में कोई हल निकाला हो या नहीं लेकिन रफ़िया जी की बातों ने मुझ पर खूब असर किया. मैंने निर्देशक को आड़े हाथों लिया और मुंबई वापस आ गयी और मेरे पास मेरी समस्या का हल भी था... मैंने फरमान की डबिंग नहीं की और क़सम खायी, 'भविष्य में उस निर्देशक के साथ काम नहीं करूंगी', और मेरी क़सम आज तक क़ायम है.

✍ **द्वारा श्री साईनाथ एस्टेट,**
**डी-३, बी-२, सह्याद्री नगर,**
**चारकोप, मुंबई-४०० ०६७**
**फोन : ९२२३२०६३५६**

---

<u>लघुकथा</u>

# स्टेटस

✍ **श्याम नारायण श्रीवास्तव**

उसने दीपावली में दो नयी शर्टें ख़रीदी थीं.

अभी तीन महीने ही पहनी थीं. एक दिन दरवाज़े पर एक भिखारी आया. कुछ मांगने हेतु आवाज़ लगायी.

उसकी पत्नी ने बाहर निकल कर कुछ पैसे दिये और वापस आ गयी. भिखारी अभी भी खड़ा था. उसने फिर आवाज़ लगायी, ''साहब बहुत जाड़ा है, कोई पुराना कपड़ा हो तो दे दें.''

उसने भीतर से ही सुन लिया. एक बार बाहर आया. भिखारी को नीचे से ऊपर तक देखा. चुपचाप अंदर गया. उन नयी शर्टों में से एक लाकर उसे दे दी.

भिखारी ख़ुश होकर दुआएं देता चला गया.

ये सब इतना जल्दी हुआ कि उसकी पत्नी कुछ समझ न सकी. वह बहुत आश्चर्यचकित थी.

''आपने इतनी नयी शर्ट उसे क्यों दे दी?'' पत्नी ने प्रश्न किया.

''उसने कहा, ठंड लग रही है, इसलिए मैंने दे दी.''

पत्नी शायद उसके उत्तर से संतुष्ट नहीं थी. उसने फिर प्रश्न किया, ''लेकिन नयी शर्ट क्यों दी?''

''मुझे पसंद नहीं थी.''

सच क्या है, वह टालना चाहता था, लेकिन उसकी पत्नी जानना ही चाहती थी. उसने फिर कहा, ''अरे! आपने तो इसे अपनी पसंद से ख़रीदा था. उस दिन कह भी रहे कि इस बार दोनों शर्टें बहुत अच्छी हैं. बात तो कुछ और ही है.'' अंततः वह अधिक देर तक बहाने न बना सका, उसने स्पष्ट कहा, ''देखो इसी तरह की शर्ट मेरे यहां एक वर्कर भी पहन कर आने लगा है.''

✍ **बी.एफ.१, जिंदल स्टील एंड पॉवर लि., खरसिया रोड, रायगढ़ (छ.ग.) ४९६००१**

## वातायन

# ''ऊंची दुकान फीके पकवान!''

*(''**क्रांति के सपूत**'' पुस्तक का प्रकाशन **मंजुश्री प्रकाशन** द्वारा किया गया था. पाठकों को संभवतः ध्यान हो कि ''कथाबिंब'' के १९८२-८४ के अंकों में इस पुस्तक का विज्ञापन अनेक बार छपता रहा है. यह पुस्तक क्रांतिकारी श्री सुखदेवराज द्वारा रचित है. ''जब ज्योति जगी'' शीर्षक से १९७१ के आस-पास यह पुस्तक पहली बार मिर्ज़ापुर के ''क्रांतिकारी प्रकाशन'' द्वारा प्रकाशित की गयी थी, किंतु पुस्तक में काफ़ी ग़लतियां थीं और सुखदेवराज जी पूरी तरह असंतुष्ट थे. यह बात एक पत्र में उन्होंने भाभा परमाणु केंद्र में कार्यरत अपने पुत्र श्री बलदेव राज महेंद्रा को लिखी थी और यह भी लिखा था कि वे पुस्तक का पुनः प्रकाशन करवाना चाहते हैं. जहां तक क्रांतिकारी प्रकाशन का प्रश्न है उनके साथ मात्र एक संस्करण प्रकाशित करने की ही बात थी. श्री बलदेव राज जो मेरे सहयोगी और मित्र थे, ने कॉपी राइट मुझे सौंपते हुए यह अधिकार दिया था कि मैं संपादन के पश्चात पुस्तक को प्रकाशित करूं.*

*इस वर्ष (२००९) के शुरू में मुझे ज्ञात हुआ कि राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नयी दिल्ली ने इस पुस्तक को पुनः प्रकाशित किया है और उसे पहला संस्करण (मूल्यः ३२५ रू.) घोषित किया है. साथ में प्रकाशन अधिकार श्रीमती उर्मिला अग्रवाल (पुत्री श्री बटुकनाथ अग्रवाल) के नाम सुरक्षित रखा गया है. मार्च ०९ में वकील के नोटिस के माध्यम से इन सारी बातों की जानकारी श्री अशोक महेश्वरी जी को मेरे द्वारा भेज दी गयी थी. तत्पश्चात मार्च ०९ के अंतिम सप्ताह में दिल्ली जाकर मैं स्वयं महेश्वरी जी से मिला. उन्होंने माना कि राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. द्वारा प्रकाशित पुस्तक व मंजुश्री प्रकाशन द्वारा प्रकाशित (क्रांति के सपूत) दोनों एक ही हैं और उन्होंने आश्वासन दिया कि वे शीघ्र ही संपादक श्री सुधीर विद्यार्थी व श्रीमती उर्मिला अग्रवाल से इस संबंध में बात करके मुझसे संपर्क करेंगे. इसके बाद एक बार फ़ोन पर भी महेश्वरी जी से मेरी बात हुई किंतु आज तक उनकी ओर से कोई कार्यवाही नहीं की गयी. ''क्रांति के सपूत'' पुस्तक की भूमिका अवकाश प्राप्त केंद्रीय गुप्तचर अधिकारी **स्व. श्री धर्मेंद्र गौड़** (गोरखपुर) ने लिखी थी जो स्वयं में एक दस्तावेज है और बहुत-से अनछुये पहलुओं को उजागर करती है- **डॉ माधव सक्सेना 'अरविंद'**.)*

### भूमिका

'क्रांति के सपूत' में क्रांति का वह इतिहास पूरी सच्चाई के साथ उजागर किया गया है, जिसे यथातथ्य रूप में बहुत कम लोग जान सके हैं. लेखक स्वयं गुलामी की ज़ंजीरों से जकड़ी भारतमाता के बंधनों को शीघ्रातिशीघ्र तोड़ डालने के लिए प्राण हथेली पर लेकर चलनेवाले, गोरे महाप्रभुओं के उत्पीड़न, अकारण अत्याचार और असहनीय शोषण से हर समय उद्वेलित रहनेवाले, विदेशी शासन की जड़ें उखाड़कर फेंक देने के लिए स्वाधीनता संग्राम में जूझनेवाले उन जवानों में से एक थे, जो विद्यार्जन छोड़कर जवानी के सारे भौतिक सुखों पर लात मार कर देश में महाक्रांति लाने के लिए संपूर्ण निष्ठा से मचल उठे थे.

लेखक स्वयं क्रांति की आग फूंकनेवाले महान बलिदानी चंद्र शेखर आज़ाद के कंधे से कंधा मिलाकर चलनेवाले क्रांति-संगठन के सक्रिय कर्मठ एवं निष्ठावान कार्यकर्ता रहे. अतः उनकी लेखनी से जो कुछ भी 'क्रांति के सपूत' के पृष्ठों पर अंकित है, वह सब निस्संदेह सत्य एवं पूर्णतः विश्वसनीय है.

जो आज़ादी हमें मिली है उसमें क्रांतिकारियों का योगदान और त्याग ही प्रमुख कारण है. उनके देश-प्रेम, उनकी राष्ट्रीयता की आंधी ने ही अंग्रेज़ी राज्य की जड़ें हिला कर रख दी थीं. असेंबली के बम विस्फोट ने उन्हें अच्छी तरह समझा दिया था, कि क्रांतिकारियों की रगों में दौड़ते हुए मर्दाने ख़ून में किस क़दर गर्मी और किस हद तक उफान आ गया है. जिसे अब अंग्रेज झेलने में समर्थ नहीं हो पायेंगे. यह बात अपनी जगह बड़ी हेय और निराशापूर्ण है कि अहिंसा की दुंदुभी बजानेवाले गांधी और जवाहरलाल जैसे नेता अपनी किन्हीं मजबूरियों के कारण क्रांति के इन सपूतों पर सहयोग का हाथ रखने की हिम्मत ही न कर पाये. नहीं तो आज इस आज़ादी का स्वरूप कुछ और ही होता. अंग्रेज़ अपनी कूटनीति से भारत का विखंडन कभी न कर पाते. किंतु शोक है, कि उनमें ऐसी सदबुद्धि ही नहीं जगी और वे फांसी के फंदों को असमय में ही चूमनेवाले देश की आज़ादी के सच्चे दीवानों क्रांति के इन सपूतों को अन्याय और अत्याचार से बचाने का पुण्य भी न कमा सके.

सबसे ज़्यादा दुर्भाग्यपूर्ण तो यह था, कि क्रांतिदल के कुछ झूठा दमख़म दिखानेवाले महज यश पाने के लोभी, दग़ाबाज़, यशपाल और वीरभद्र जैसे घिनौने गद्दारों ने तो इतने सुगठित दल की मुख़बिरी करके सारी गतिविधियां ही विदेशी सरकार तक पहुंचानी शुरू कर दीं. चंद चांदी के टुकड़ों और विलासी जीवन बिताने के चक्कर में. दल की नीति के अनुसार ब्रह्मचर्य-पालन तो दूर, लड़कियां भगाकर लाने का दुष्कर्म भी कर बैठे. ऐसी हरकत पर ये गद्दार प्राण दंड की जगह क्षमा याचना में भी सफल हो गये. परिणामतः दल के गुप्त कार्यकलापों की जानकारी अंग्रेज़ों को बख़ूबी दी जाने लगी और नतीजा यह हुआ कि ये रंगे सियार तो बच निकले मगर मौत को गले लगाया उन्होंने, जिनकी नस-नस में देश-प्रेम समाया था, जो जीवन का हर प्रलोभन, हर सुख स्वराज्य के सुंदर सपने साकार करने के लिए होम कर चुके थे. फिर भी उनका त्याग, उनकी कुर्बानी, उनकी क्रांति नीति से अंततः आजादी मिली, किंतु जाने-अनजाने न जाने कितने नौनिहालों की शहादत और चंद्रशेखर आज़ाद जैसे अपूर्व जीवट वाले महान सेनानी स्वाभिमानी और दृढ़निश्चयी देशानुरागी को हमसे छीनने के बाद.

ऐसे कर्मवीरों के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि यही होगी कि हम इस 'क्रांति के सपूत' को घर-घर पहुंचायें. बुद्धिजीवियों से लेकर साधारण जन भी इसे पढ़ें और जानें कि असलियत क्या थी! ऐसी धाराप्रवाह भाषा-शैली में एक उत्कृष्ट उपन्यास जैसी आनंद देनेवाली यह पुस्तक प्रत्येक श्रेणी की शिक्षण संस्थाओं में पहुंचने योग्य है. जन-जन तक यह ऐतिहासिक दस्तावेज़ पहुंचे, यही प्रयास होना चाहिए और यही लेखक की सच्ची सराहना होगी.

मेरा परम सौभाग्य जो 'क्रांति के सपूत' की भूमिका लिखने का दायित्व मुझे सौंपा गया. गुप्तचर विभाग में अपने तीस-वर्षीय सेवाकाल के दौरान मैंने दस वर्षों तक तो अंग्रेज़ों की ही ख़िदमत की थी. अतः मुझे अधिकांश जानकारी रही उनके कार्यकलापों की. अंग्रेज़ों को भय था तो बस क्रांतिकारियों का ही. खद्दरधारी नपुंसक कांग्रेसियों की तो उन्होंने कभी भी परवाह नहीं की. इंटेलिजेंस डिपार्टमेंट हेडक्वार्टर्स, स्पेशल ब्रांच, गोखले मार्ग, लखनऊ की मोटी-मोटी फ़ाइलों में दफ़न है क्रांति के इन दीवानों की सत्य-कथा, जिनका अनेक बार अध्ययन करके मैंने नोट्स तैयार किये. फिर अवकाश ग्रहण करते ही विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से भीषण विस्फोट किया. 'आज़ाद के गद्दार साथी' पुस्तक हिंदी में लिखी और 'दि आज़ाद एपीसोड' अंग्रेज़ी में. मेरी इस कार्यवाही ने देश के इन गद्दारों को सदा-सदा के लिए सुला दिया. इसी सिलसिले में श्री सुखदेव राज से मेरी लखनऊ में भेंट हुई थी. दो बार श्रीमती सुशीला आज़ाद भी गोरखपुर में मेरी मेहमान रहीं. पंडित परमानंद प्रेमी से भी यहीं भेंटवार्ता हुई. अनेक भूतपूर्व क्रांतिकारियों के प्रशंसा-पत्र भी मिले. सभी ने मेरे हौसले की मुक्त हृदय से दाद दी.

पुस्तक की छपाई-सफ़ाई आकर्षक है. प्रूफ़ की कोई ग़लती ढूंढ़ने पर भी नहीं मिली. मेरा पुनः विनम्र निवेदन है, कि 'क्रांति के सपूत' से घर-घर की शोभा बढ़े.

**रुंगटा बिल्डिंग, सिनेमा रोड, गोरखपुर-२७३००१**

---

## : प्राप्ति-स्वीकार :

**धुंध के विरुद्ध** (कहानी संग्रह): **डॉ. सतीश दुबे**, साहित्य संस्थान, ई-१०/६६०, उत्तरांचल कॉलोनी, गाजियाबाद-२०११०२, मू.१९०रु.

**कोई फ़ायदा नहीं** (उपन्यास): **श्याम सखा 'शाम'**, प्रयास ट्रस्ट, १२ विकास नगर, रोहतक-१२४००१. मू. १२५ रु.

**कही-अनकही** (ल.उपन्यास): **डॉ. गोपाल कृष्ण शर्मा**, सुभम आर्टस ऑफसेट, ८लालबाग, टंडन मार्केट, लखनऊ. मू.१५०रु.

**विरासत....**(क.सं.): **ए. एन.नंद**, पी.एम.जी., मुजफ्फरपुर - ८४२००२. मू.२५०रु.

**गांव गोहर से** (कहानी संग्रह): **परमानंद 'अधीर'**, श्री अंगिरा शोध संस्थान, ४१९/३, शांति नगर, पटियाला चौक, जींद - १२६१०२. मू.१००रु.

**कलंक** (कहानी संग्रह): **चरित्र पाल सिंह निम**, लिपि मानसी प्रकाशन, बी-४९/से -१५ नोएडा, गौतमबुद्ध नगर - २०१३०१. मू. ३००रु.

**आम औरत जिंदा सवाल** (गद्य): **सुधा अरोड़ा**, सामयिक प्रकाशन, ३३२०-२१, जटवाड़ा, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२. मू.१२०रु.

**जलतरंग** (ल.सं.): **ज्योति जैन**, दिशा प्रकाशन, १३८/१६, त्रिनगर, नयी दिल्ली - ११००३५. मू.१५०रु.

**अपने-अपने सपने** (ल. सं.): **घनश्याम अग्रवाल**, दिशा प्रकाशन, १३८/१६, त्रिनगर, नयी दिल्ली - ११००३५. मू.२००रु.

**समय के चाक पर** (कविता सं.): **शब्बीर हसन**, सेंच्यूरी पब्लिकेशन्स, तारणी प्रसाद लेन, पटना-८०००००८. मू.१००रु.

**नहाये रोशनी में** (कहानी संग्रह): **तेज राम शर्मा**, सूर्यप्रभा प्रकाशन, २/९, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली -११०००२. मू.२००रु.

**काले पन्नों पर लिखी इबारत** (कहानी संग्रह): **राजेंद्र सिंह गहलौत**, रेमाधव पब्लिकेशन्स प्रा.लि., आर डी पी, राजनगर, गाजियाबाद- २०१००२. मू.६५रु.

**आखिर क्यों?** (कहानी संग्रह): **देवेंद्र कुमार मिश्रा**, दीपा प्रकाशन, प्लॉट नं.१४६, इंदिरापुरम, गाजियाबाद-२०१०१०. मू.१५०रु.

**ये आंसू !** (ग.सं.): **हरीलाल मिलन**, संवेदना प्रकाशन, कासिमपुर, पॉवर हाउस, अलीगढ़-२०२१२७. मू.१२०रु.

**प़लाश वन दहकते हैं** (काव्य/गद्य): **सं.विनय मिश्र**, नया आयाम प्रकाशन, हसन खां मेवात नगर, अलवर (राज.). मू.४००रु.

**अंजुरी अंजुरी धूप** (दो.सं.): **चंद्रसेन विराट**, समांतर प्रकाशन, तराना, उज्जैन (म.प्र.). मू.१००रु.

**प्रिया तुम्हारी धूप** (दो.सं.): **अशोक अंजुम**, संवेदना प्रकाशन, कासिमपुर, पॉवर हाउस, अलीगढ़-२०२१२७. मू.१००रु.

**धूप कुंदन** (हाइकू संग्रह): **डॉ.सुरेंद्र वर्मा**, उमेश प्रकाशन, १०० लूकरगंज, इलाहाबाद-२११००१. मू.१२५रु.

# पुस्तक-समीक्षा

## 'आंखों देखा हाल बयान करतीं कहानियां'

डॉ.गंगाप्रसाद बरसैंया

**काले पन्नों पर लिखी इमारत** (क.सं.) : **राजेंद्र सिंह गहलौत**

**प्रकाशक** : रेमाधव पब्लिकेशन्स प्रा. लि., राजनगर, गाज़ियाबाद (उ.प्र.), **मू.-** १००रु.

आदिवासियों वनवासियों का क्षेत्र. दूर-दूर तक फैले जंगल के बीच ग़रीबी, भुखमरी, शोषण, हाड़तोड़ परिश्रम और दारू. कोयले की खदानों से जूझते काले-कलूटे फटेहाल मजदूर. दूसरी ओर छल छंद से कमाये गये पैसे से संपन्न धनवान और बलवान बने तथाकथित बड़े लोग व्यापारी, अधिकारी, ठेकेदार और नेता. इसी दुनिया की जीवंत तस्वीरें गहलौत की कहानियों में देखी जा सकती हैं. जो लोग उनके संगाती है वे जानते हैं कि उनकी कहानियों में कल्पना का अंश कम, वास्तविकता अधिक है. केवल नाम गांव बदले हैं घटनाएं सच्चाई से जुड़ी हैं. आदिवासियों की दुनिया कठोर परिश्रम, शराबखोरी, और शोषण की शिकार दुनिया है. सामाजिक विषमता का विद्रूप देखना हो तो इनकी दुनिया में झांकना चाहिए. कोयलारी के मजदूरों का जीवन किसी संवेदनशील व्यक्ति को प्रभावित किये बिन नहीं रह सकता. गहलौत को इनसे रोज़ ही दो-चार होना पड़ता है.

'काले पन्नों पर लिखी इबारत' उनका पहला कहानी संग्रह है जिसमें कुल तेरह कहानियां संग्रहित हैं. इसकी कुछ कहानियां ऐसी हैं जिन्हें श्रेष्ठ कहानियों की पंक्ति में रखा जा सकता है. 'काले पन्नों पर लिखी इबारत', 'मजूर बेटा' और 'ग़लती' ऐसी ही कहानियां हैं. 'काले पन्नों पर लिखी इबारत' दृष्टिहीन व्यक्ति की कहानी है जिसकी साहित्य में अभिरुचि है और स्वयं कहानियां लिखना चाहता है. सर्जना की ललक और उत्साही कल्पना से लबरेज वह दृष्टिहीन व्यक्ति एक उपन्यास लिखने में जुटता है. दृष्टिहीनता के कारण वह यह नहीं देख पाता कि उसके पेन की रिफिल समाप्त हो चुकी है. वह पन्ने पर पन्ने गोदता चला जाता है और जब अपना पूरा किया गया उपन्यास वह अपने लेखक मित्र को दिखाता है तो कोरे काग़ज़ का सत्य उससे छिपा लेता है ताकि वह उस आनंद से वंचित न हो जाये. उसके हृदय को आघात न लगे क्योंकि वह दृष्टिहीन व्यक्ति अपनी सफलता की कल्पनाओं में जीवित और आनंदित है. गहलौत ने इस तथ्य का अत्यंत मार्मिक तथा मनोवैज्ञानिक ढंग से चित्रण किया है.

'मजूर बेटा' एक ऐसे ग़रीब अनपढ़ मजदूर की कहानी है जो भूखा रह कर भी मालिक का काम करने को विवश है. वह और उसका परिवार ठेकेदार के शोषण का शिकार है. एक ओर तीन दिन से उसका भूखा परिवार बिलख रहा है और दूसरी ओर मौजमस्ती और शराब के नशे में धुत्त ठेकेदार न तो उसे मजदूरी देता है और न उसके भूखे परिवार की चिंता करता है. ऊपर से अपने मनोरंजन के लिए उसे नाचने गाने के लिए मज़बूर करता है. भूखा प्यासा ग़रीब मजदूर मजदूरी पाने की आशा में मालिक को प्रसन्न करने के लिए विवश होकर नाचता-गाता है. यहां कहानीकार ने जहां समाज में व्याप्त विषमता का दिग्दर्शन कराया है वहीं संपन्न वर्ग की शोषण प्रवृत्ति और संवेदनशून्य पशुता की ओर भी ध्यान आकर्षित किया है. तीसरी ओर पी.सी.ओ. का मालिक है जो अमानवीय आचरण देख कर भी बिना किसी प्रतिक्रिया के चुपचाप वहां से चला जाता है. यह कहानी भी अत्यंत मार्मिक बन पड़ी है.

'ग़लती' भी संग्रह की ऐसी ही मार्मिक और पीड़ा से भरी कहानी है जो पाठकों को देर तक उद्वेलित करती रहती है. भय की मानसिकता व्यक्ति को कहां से कहां ले जाती है. मध्यमवर्गीय परिवार का क्लर्क अपनी पूरी क्षमता से अपना कार्य करता है किंतु कमज़ोर आर्थिक स्थिति के कारण प्रतिक्षण अपनी नौकरी की सुरक्षा के लिए चिंतित रहता है. आत्मविश्वास की कमी और असुरक्षा की चिंता व्यक्ति के भय को और भी घना तथा भयावह बना देती है. कठोर स्वभाव का अधिकारी क्लर्क डिक्टेशन देते हुए यह धमकी देता है कि यदि ग़लती हुई तो वह उसकी नौकरी लेने से भी नहीं चूकेगा. बस यही वाक्य क्लर्क को पल-पल विचलित और परेशान किये रहता है. ग़लती की आशंका उसे बेचैन करती है, उसे लगता है कि यदि ग़लती हुई और उसे नौकरी से निकाल दिया गया तो उसके परिवार का क्या होगा. वह अपनी टाइपिंग की शुद्धता जानने और निश्चित होने की भरसक चेष्टा करता है. पर गरूर में

डूबे अधिकारी उसकी भावनाओं पर ध्यान नहीं देते. अंततः उसकी चिंता इतनी घनीभूत होती है कि वह इस आशा से आत्महत्या कर लेता है कि उसके बदले परिवार के दूसरे सदस्यों को अनुकंपा नियुक्ति मिल जायेगी क्योंकि नौकरी से निकाले जाने पर तो पूरा परिवार ही बरबाद हो जायेगा. जब एक अधिकारी टाइपिंग सही होने की और पदोन्नति होने की सूचना देते हैं तब तक सारा खेल ही समाप्त हो जाता है. कहानी का यह प्लॉट पाठकों को भीतर तक हिला कर कंपकंपी पैदा करता है. गहलौत की यह कल्पना, कथानक का ऐसा प्रस्तुतीकरण, मनोदशा का ऐसा चित्रण कहानी को बड़ी ऊंचाई तक ले जाता है.

कोलयारी में उत्तरप्रदेश व बिहार के अनेक मजदूर नाम बदलकर एक दूसरे के स्थान पर नौकरी करते हैं. परिस्थितियों की विवशता में व्यक्ति ख़तरा मोल लेकर भी जीने को विवश है. इस विवशता की भयावहता से पुरानी पीढ़ी जितनी विचलित होती है उतनी नयी पीढ़ी नहीं. नयी पीढ़ी तो येनकेन प्रकारेण अपना काम बना लेना चाहती है. 'नाम में क्या रखा है' कहानी में यही दर्शाया गया है जहां राम सिंह विशंभर सिंह बन जाता है और इसी नाम से अपनी बच्ची की शादी के कार्ड छपवाता है. यह बात बराबर उसके अंतर्मन को कचोटती रहती है लेकिन नयी पीढ़ी के उसके पुत्र-पुत्री को इसमें कोई आपत्ति नहीं होती है. सांप्रदायिकता का जुनून व्यक्ति को इतना हिंसक बना देता है कि वह सभी को दुश्मन की दृष्टि से देखता है पर सभी इन्सान एक से नहीं होते तभी तो इन्सानियत की भावना से अभिभूत सरदार परविंदर अपनी जान देकर भी बच्चे को बचाता है. मनुष्यता सभी प्रकार के जातिगत भेदभाव से ऊपर होती है. इसका प्रतिपादन 'काके दी गड्डी' में किया गया है. इसमें बच्चे की भयभीत मनोदशा का अच्छा चित्रण है.

'केंचुआ' कहानी में दब्बू व्यक्ति की मनःस्थिति और दशा का चित्रण है. स्वाभिमान शून्य आत्मकेंद्रित व्यक्ति का जीवन केंचुए की तरह होता है जिसका कोई महत्व नहीं. 'दुम! दफ़्तर और बुलडॉग' में अफ़सर के कृपाकांक्षी चापलूसों का रोचक चिक्षण है जो कि कुत्ते की तरह दुम हिलाते आगे पीछे घूमते रहते हैं. 'दोस्त' में दो पीढ़ियों के सोच में अंतर और 'गैरत' में आदमी के अंदर छिपे पाखंड और दुर्बलता को उजागर किया गया है. 'सौदा' में एक ओर जवान बेटी के विवाह की चिंता से चिंतित बाप की मनोदशा का चित्रण है तो दूसरी ओर उस गिरे हुए इंसान की नीचता की पराकाष्ठा है जहां बाप स्वयं अपनी पुत्री की देह का सौदा बेशर्मी से करता है. 'वसीयत' में लालची संतान के सोच को कहानी का विषय बनाया गया है तथा 'मासूम' में एक भोली निर्मल मन की बच्ची के साथ भद्र कहे जाने वाले प्रोफेसर के कुकृत्य को अंकित किया गया है जिसके कि फलस्वरूप फूल सी कोमल चंचल बेटी सदैव के लिए व्यथित हो जाती है.

इस प्रकार इन कहानियों में विविध प्रवृत्ति, परिस्थितियों 'पात्रों' - मनोदशाओं के चित्र मिलेंगे. जो आज के जीवन में यत्र तत्र, सर्वत्र देखने में आते हैं. गहलौत की कहानियों की भाषा सरल है उनमें पर्याप्त कथात्मकता है, आंचलिक बोलियों के प्रयोग से सहजता और स्वाभाविकता है. 'तलाश एक अदद कहानी की' को इसमें शामिल करने की आवश्यकता नहीं थी. कुल मिलाकर गहलौत के इस प्रथम संग्रह की कुछ कहानियां उनके उज्ज्वल भविष्य के प्रति आश्वस्त करती हैं जहां न शिल्प का आडंबर है, न भाषा का आतंक, न कल्पना की कोरी उड़ान और न वाद का आग्रह. वहां आंखों देखी दुनिया का सहज संवेदना के साथ प्रायः मनोवैज्ञानिक चित्रण है.

**१२ एमआईजी, चौबे कॉलोनी,**
**छतरपुर (म.प्र.)**

---

# संभावनाओं के पलाश वन

**जीवन सिंह**

**पलाश वन दहकते हैं** (संकलन) : **स्व. मंजु अरुण**
**प्रकाशक** : नया आयाम प्रकाशन, अलवर (राज.)
**मूल्य** : ४०० रु.

मंजु अरुण अब स्मृतिशेष हैं. कुल तैतालीस वर्ष की अवस्था में नवंबर २००७ में उनका आकस्मिक निधन हो गया. उनके निधन के पश्चात उनके पति के सहयोग से डॉ. विनय मिश्र के संपादन में 'पलाश वन दहकते हैं' शीर्षक से उनकी प्रतिनिधि रचनाओं का संकलन अलवर के 'नया आयाम प्रकाशन' से प्रकाशित हुआ है. इसमें उनकी कविता, कहानी, ग़ज़ल, नाटक, लेख, साक्षात्कार और समीक्षाओं में से आवश्यक और विशिष्ट का चयन, संपादक ने किया है और इसका

शीर्षक भी डॉ. विनय मिश्र ने अपनी रुचि, संस्कार एवं स्वभाव के अनुरूप दिया है. चूंकि मंजु अरुण की कारयित्री प्रतिभा मूलतः एक कवियित्री की थी, इसलिए इस संकलन में कविता खंड विशेष बन पड़ा है तो यह स्वाभाविक है. इसमें उनकी कुल एक सौ बीस कविताएं संकलित हैं. बीस ग़ज़लें तथा पंद्रह कहानियां हैं. एक नाटक, लेख, समीक्षा व साक्षात्कार बानगी की तरह है.

इस संकलन में मंजु अरुण की रचनात्मकता की कई विशेषताएं उजागर हुई हैं. पहली बात यह है कि वे साहित्य-संस्कृति के प्रति गंभीर संकल्प लेकर चलीं और अपने अध्ययन तथा अनुभव से उस जीवन-दृष्टि तक पहुंचीं, जहां पुनरुत्थानवादी भावना के विपरीत आधुनिक एवं समकालीन सोच के लिए स्पेस बनती है. कविता अंततः सौंदर्य-सृष्टि होती है, किंतु इसके लिए एक द्वंद्वात्मक प्रक्रिया से गुज़रते हुए रचनाकार को अपने व्यक्तित्व के लिए नयी ज़मीन बनानी पड़ती है. इन रचनाओं से जाहिर है कि उनको अपनी ज़मीन मिल गयी थी. वे उनमें आज के सवालों को, उनके सही कोण से उठाती हैं. हम देखते हैं कि वे अपने समय को समझती हुई उसकी चुनौतियों के रू-ब-रू होने का लगातार प्रयत्न करती हैं. इनमें कथ्य के सरलीकरण के बावजूद यह लगता है कि यदि उनको और जीवन मिलता तो वे समय के अंतर्गथित एवं जटिल सूत्रों को समझ पातीं. बावजूद इसके उनके पास एक सकारात्मक सोच है, जो उन्हें विसंगति, विडंबना व आक्रोश-कथन से आगे एक आशा-उल्लास भरे भावलोक में ले जाता है. यह आकस्मिक नहीं है कि औरतों की ज़िंदगी पर इसमें अनेक कविताएं हैं. मसलन संकलन की पहली कविता ही है - 'एक औरत चाहे तो.' औरत की संभावनाएं कहीं पुरुष से कम नहीं होतीं. सभी लोग सामान्यतया यही दिखलाते और बतलाते हैं कि 'का न करै अबला प्रबल' किंतु इस मामले में मंजु अरुण की राय दूसरों से भिन्न है. वे भी मानती हैं कि एक औरत तरु, लता, फूल, जंगल, नदी, निर्झर, ताल, आंधी-बरसात, धरती, आकाश-पाताल, पूरा ब्रह्मांड, दुर्गा, चंडी, ज्वाला, महाकाली, महाविकराली सभी कुछ बन सकती है, लेकिन फिर भी कुछ ऐसा है कि जो वह नहीं बन पाती-

*'एक औरत*
*मगर लाख चाहे तब भी*
*बन नहीं पाती कभी एक पुरुष*
*एक पूर्ण पुरुष.'*

यहां व्यंजना से उक्त चार पंक्तियों के मनमाने पाठ किये जाने की संभावना बची रहती है. इस 'पुरुष' का एक पूरा इतिहास है. पुरुष-वर्चस्व की सामाजिक-सांस्कृतिक स्थितियों में स्त्री के लिए कभी कोई बड़ी रचनात्मक संभावनाएं दुनिया में कहीं नहीं होतीं. उसकी दैहिक स्थितियों ने हमेशा उसकी शक्तियों को सीमित किया, जिसका लाभ हमेशा ही पुरुष-सत्ता को मिला. इसीलिए समाज में आज भी पुत्री-कामना की जगह पुत्र-कामना का ही वरद हस्त रहता है. स्वयं स्त्री, इस पहेली को नहीं समझ पाती. इससे स्त्री का पक्ष अपनी सीमाओं में विरोधी एवं प्रतिरोधी रहा है. आज भी विचार की भौतिक शक्ति का अगुआ पुरुष ही बना हुआ है. स्त्री की भागीदारी आरक्षण की बैसाखी पर सुनिश्चित की जा रही है. कवयित्री की शब्दावली में 'पूर्ण पुरुष' का मंतव्य जो भी रहा है, कहीं यह एक आध्यात्मिक अर्थ की ओर भी इशारा करता दिखाई देता है. मीरा ने भी वृंदावन के गौड़ीय संप्रदाय के दार्शनिक जीव गोस्वामी से यही कहा था कि ब्रज में तो अकेले पुरुष, श्रीकृष्ण हैं, बाकी सब तो स्त्रियां ही हैं. बहरहाल, ध्वनि यह भी है कि स्त्री, स्त्री ही क्यों न रहे? क्यों बने वह पुरुष? किसी की अनुगामी व पिछलग्गू क्यों बने? मीरा की तरह अपना स्वाधीन एवं सृजनात्मक व्यक्तित्व क्यों न बनाये वह. कविता के किसी शब्द-प्रत्यय में यदि अर्थ की गांठ पड़ी हुई है, तो वह अलग-अलग पाठकों के लिए अर्थ के नये द्वार खोल देती है. यहां 'पूर्ण पुरुष' प्रत्यय में ऐसी गांठ है.

यह बात भी यहां कवयित्री की विशेष अभिरुचि और दृष्टि-दिशा को दर्शाती है कि वह उसके व्यक्तित्व-प्रसार के लिए प्रकृति से उपमान चुनती है या फिर भारतीय मानसिकता के मिथकीय संस्कार से. वह कदाचित स्त्री के कोमल, करुण, स्मित, पुरुष और रौद्र पक्षों को इसी प्रक्रिया से बतला सकती थीं. अकेला 'पुरुष' या 'पूर्ण पुरुष' उपमान ही यहां ऐसा है जो न प्रकृति है, न मिथक. पूरी कविता के रचाव में वह भिन्न एवं विशेष है. वह स्त्री की ताकत भी है और सबसे बड़ी कमजोरी भी. जो कुछ भी हो इसे पूरे संकलन का 'मंगलाचरण' कहा जा सकता है, यद्यपि आज की कविता के संदर्भ में यह एक बेतुकी बात है. फिर भी यह मन है, जो एक साथ कई सूत्रों को जोड़ देने की आकांक्षा

पाले रहता है.

प्रकृति यहां सर्वत्र है. आज जब ज़्यादातर कवियों के हाथ से प्रकृति लगभग खिसक चुकी है, वहां मंजु अरुण का प्रकृति को सहेज कर रखना उत्साहित करता है. एक गहरा असंतोष कवयित्री को अपने समय और समाज से है, जो लगभग हरेक कविता, ग़ज़ल और कहानियों में व्यक्त हुआ है. कहानियों में स्त्री-पुरुष के रिश्ते को लेकर गहरी चिंता व्यक्त हुई. पुरुष-सत्ता किस तरह स्त्री-भावनाओं का शोषण करती है, जब कि स्त्री है कि वह समर्पण भाव को त्याग नहीं पाती. एक अजीब तरह की उलझन में स्त्री-पुरुष के रिश्ते यहां नज़र आते हैं. क्योंकि कवयित्री की मान्यता है कि यह प्रेम ही है, जिसकी वजह से स्त्री 'पुरुषार्थ' की तानाशाही तक झेल लेती है. 'प्रेम में' कविता में वे लिखती हैं - 'प्रेम में/झेल लेती हैं वे/ सीता-सा अनंत संताप/ उर्मिला-सा मूक विलाप / मीरा-सा सरल, सहज विषपान / और / सोहिनी-सा आत्मबलिदान/.' लेकिन प्रश्न यह उठता है कि यह अकेली स्त्री ही प्रेम में सब कुछ क्यों झेलती है असली प्रेम तो तभी होगा, जब स्त्री-पुरुष दोनों मिलाकर झेलेंगे. इस तरह कहीं-कहीं कवयित्री का स्त्री-मन नकली प्रेम के जाल में फंसता दिखाई देता है. यह 'प्रेम' की एक ऐसी समझ है, जो पुरुष ने ही स्त्री को दी है. इस तरह की कई धारणाएं हैं, जिनकी रूढ़ियों को कवयित्री नहीं तोड़ पायी है.

मंजु अरुण की कविताएं मुक्तछंद में तो हैं, किंतु ये छंद विहीन गद्य नही हैं. उनसे जितना बन पड़ा है, उन्होंने लय उत्पन्न करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है. यह लय ही है, जो उनकी कविता को प्रगीत का स्वभाव प्रदान करती है. बड़े कवियों की कविताओं की अनुगूंजें भी उनकी कविताओं में मिलती हैं. किंतु वे उनका उपयोग अपनी शैली में पिरोकर करती हैं. आज की मुख्यधारा के कवि विजेंद्र से उनका निरंतर संपर्क रहा. वे 'कृति ओर' में कई बार छपीं और ख़तोक़िताबत करके विजेंद्र जी से अपने लिए एक काव्यदिशा निर्धारित की. प्रकृति का जो साहचर्य-भाव उनकी कविता में आ पाया है, वह सब इसी संपर्क एवं संवाद की देन कही जा सकती है. यह संयोगमात्र नहीं है कि मंजु अपनी कविताओं में आसमान को नहीं, धरती को चुनती हैं -

*'रोटी का स्वाद*
*धरती से पूछो / जो भूख सेती है*
*आसमान से नहीं / जो सर उठाये*
*हरदम अघाया होता है.'*

ऐसा भी लग सकता है कि एक ही कविता है, जिसे वह रूप बदल बदलकर लिख रही हैं. जैसे व्यक्ति वेश बदलता है, वैसे कविता भी नये-नये वेश धारण करके आती है. होती है दरअसल वह एक ही कविता. लेकिन जो बात वह कविता में नहीं कह पायीं, उसको कहानी में खोल-खोलकर तथा विस्तार से कहने की कोशिश की है. अलबत्ता, कहानियों में भी उनका कवि, उनके कहानीकार के साथ लगा रहा है. यदि उनको और उम्र मिली होती तो निस्संदेह, उनकी रचनाओं में संभावनाओं के सघन पलाश खिलते.

**१/४ अरावली विहार,**
**अलवर (राज.) ३०१००१**

## 'आपसी रिश्तों की कहानियां'

**श्रीराम दवे**

**धुंध के विरुद्ध** (कहानी-संग्रह) : **डॉ. सतीश दुबे**
**प्रकाशक :** साहित्य संस्थान, ई/१०/६६०, उत्तरांचल कॉलोनी, लोनी बॉर्डर, गाज़ियाबाद (उ.प्र.)
**मूल्य :** ७५ रु.

सुपरिचित कथाकार डॉ.सतीश दुबे का सद्य प्रकाशित कहानी संग्रह 'धुंध के विरुद्ध' एक उल्लेखनीय कृति है जिसमें डॉ. दुबे ने कई जाने-पहचाने चरित्रों को न केवल उनकी समग्रता में उकेरा है बल्कि कहानियों का ताना-बाना भी बुना है. डॉ. दुबे मालवांचल के ऐसे कथाकार हैं जिन्हें कहानियों के पात्रों के चरित्र चित्रण, उनके अंतर्द्वंद और समसामयिकता निभाने में महारत हासिल है.

जहां तक संग्रह 'धुंध के विरुद्ध' की कहानियों का सवाल है तो इसमें संवेदना, करूणा और मनोभावों सहित संप्रति सामाजिक मूल्यों को केंद्र में रखते हुए कई कहानियां हैं. कुल जमा बाईस कहानियों में से दो कहानियां 'शंकर भगवान गिरफ़्तार' तथा 'जात की मरजाद' पुराने तेवर की कहानियां हैं जिनके विषय तत्कालीन होते हुए भी कमोबेश समसामयिक हैं.

'लोहांगी' में जहां स्मृतियों की झड़ी लगाते हुए

'संदूकची' के बहाने अतीत को देखने की पारखी दृष्टि नज़र आती है तो 'किरचे किरचे ज़िंदगी' को राज की कहानी कहा जा सकता है. स्त्री और पुरुष के बदलते सोच की इस कहानी में पहले से बिखरे हुए स्त्री और पुरुष को नये हौसले के साथ जीवन जीने की प्रेरणा समाहित है. 'महामारी' बाज़ारवाद से प्रभावित कहानी है जिसमें तपन दा के बहाने से कई सत्य और चेतावनियां सामने लाकर लेखक ने समसामयिकता पर अपनी पकड़ साबित की है. 'शीलाजी रुकी नहीं' एक आधुनिक किंतु ख़ुद्दार औरत की कहानी है जिसे पति और प्रेमी तो ठीक, ख़ुद उसकी लड़की तक समझ नहीं सकी. 'आभार' फड़नीस बाबू की कहानी है तो 'शिखर' आपसी रिश्तों को उकेरती है. 'आस्था' लछमी और नारायण की कहानी है तो 'सभ्यता के दायरे' में नरेश के जरिए नौकर मम्मू की कहानी कही गयी है. 'पापा का सांप' में गौरा महरी है तो 'क्वेश्चन मार्क' में शंकर मास्टर और उसके विद्रोही स्वरूप को दिखाया गया है. 'मिस मोना' में एक नर्स की संवेदना का क्षितिज ताना गया है तो 'मुजरिम' में एक नेकदिल मुसलमान पिता की कहानी है जो अपनी बेटी को उसके पति की हत्या के जुर्म में जेल तो भिजवाता ही है, अख़बारनवीस को यह घटना प्रकाशित करने का आग्रह भी करता है. एक पिता की विवशता को शब्द देती यह कहानी संग्रह की श्रेष्ठ कहानी कही जा सकती है जो उस वैचारिक भीरुता को चीरती है जिसमें लोग अपने वालों को हर संभव बचाने की कोशिश करते हैं. भले ही वे अपराधी क्यों न हों.

संग्रह की अन्य कहानियों में 'पटाक्षेप' एक सुखांत कहानी है जिसमें समर्पण के कई रंग हैं. 'प्रेत संस्कार' एक कम उम्र नौकरानी की कहानी है जो अंततः चोर नहीं थी. 'किरकिराते संशय' में रोचकता, सहजता, शिष्ट हास्य और संबंधों की प्रगाढ़ता एक साथ मौजूद हैं. 'पत्थर पर फसल' संग्रह की एक अच्छी कहानी है. जिसमें सूरज, चमन, जब्बार सेठ तथा बल्लू जैसे पात्रों का चतुष्कोण रचा गया है. काम की तलाश में शहर आये व्यक्ति का स्वाभिमान, सहज स्वभाव कर्तव्य निष्ठा और निडरता का ताना-बाना इस कहानी में बुना गया है. 'लवीश चाचाजी' कहानी में भागदौड़ भरी ज़िंदगी में एक आत्मीय की मौत की ख़बर और उसकी अंत्येष्टि में नहीं पहुंच पाने की व्यथा और बाद में मृतक की दी हुई सीख से नया दिशा बोध, 'शो मस्ट गो ऑन' जैसी अनुभूति शब्दों में ढाली गयी है.

<u>लघुकथा</u>

## महंगाई

✍ पंकज शर्मा

रघुबीर अपने बीमार बच्चे के लिए फल खरीदने के लिए आया था. फलों के बढ़े हुए दाम सुनकर मन ही मन सोच रहा था, 'क्या लूं और क्या न लूं?' लूं भी कुछ या न लूं? लेना तो पड़ेगा थोड़ा बहुत शंकर के लिए. कितनी महंगाई हो गयी है? फलों के दाम भी कहां से कहां पहुंच गये हैं?

तभी एक अमीर औरत कार से उतरी. उसने बिना दाम पूछे एक किलो बढ़िया सेब और एक दर्ज़न बढ़िया केले ख़रीदे और पांच सौ रुपये का नोट निकाल कर दुकानदार को पकड़ा दिया. दुकानदार ने चार सौ और कुछ रुपये उसे वापिस कर दिये. चार सौ के साथ कुछ रुपये और वापिस मिलते देख बरबस ही उस औरत के मुंह से निकला, फ्रूट तो सस्ता ही चल रहा है.

यह सुनकर रघुबीर ने उस औरत की तरफ देखा. उसे लगा कि महंगाई नहीं बढ़ी है, सिर्फ़ उसी के पास रुपये नहीं हैं. जिसके पास रुपये हैं, उसके लिए कोई महंगाई नहीं है.

.... वह वहीं खड़ा था, और वह औरत जा चुकी थी.

**प्लॉट-१९, सैनिक विहार, सामने विकास पब्लिक स्कूल, जंडली, अंबाला शहर (हरि.)**

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'धुंध के विरुद्ध' में कहानीकार अपनी अनुभूतियों को कई स्तरों पर रखते हुए चित्रलिखित तो करता ही है, कई जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा भी करता जाता है. अधिकांश कहानियों में रोचकता का पुट है तो बदलते जा रहे समय और समाज की नयी ज़रूरत की नयी चीज़ों/नये मूल्यों को, नये शब्दों को सलीके के साथ कहानी में प्रयोग करने की दक्षता भी है, यही कारण है कि संग्रह की अधिकांश कहानियां उस धुंध की ख़िलाफत करती प्रतीत होती हैं जिसने रिश्तों और संवेदनाओं को ढांप लिया है.

**जी-५, सिंचाई कॉलोनी, दशहरा मैदान, उज्जैन (म.प्र.)४३६०१०**

कविताएं

## गिनती के क्षण

✍ मधु प्रसाद

गिने चुने ही रह गये
लो वासंती क्षण.

सांसों के स्वर सीमाओं के पार हुए,
पतझर वाले दिवस गले के हार हुए.
सूरज भी उगते ही मानो ढल जाता,
अंधियारे ही जीवन का आधार हुए.

सांप समय की कुंडली मारे देख रहा,
आग लगायेगा जंगल में अब चंदन.

पल छिन में ही बीत गये मीठे पलछिन,
नश्तर बन कर यादें चुभा रही हैं पिन.
सांसों के पिंजर में जिनको पाला था,
सोने का दाना चुगते चांदी के दिन.

संबंधों को जाने किसकी नज़र लगी,
मौन हो गये जबसे हुआ परावर्तन.

बीते दिन मनुहारों, औ' मल्हारों के,
कजरी, चैती, सावन मस्त बयारों के.
मरुथल जैसी अब केवल सूनी रातें,
सभी मुहाने सूख गये जलधारों के.

नदिया का बहना ही सबने देखा है,
किसने उसके अंतर में देखा क्रंदन ?

क्या लौटा पायेगा कोई हंसते दिन,
खुले आम बिकते थे सस्ते-सस्ते दिन.
बिन मौसम के जब गाती थी रागनियां,
बिना ताल के हो जाती थी धा तिन तिन.

कांटों पर चलना भी मैंने सीख लिया,
मुक्त हो गयी तोड़ दिये सारे बंधन.

**२९, गोकुलधाम सोसायटी,
कलोल-महेसाणा, राजपथ, चांदखेड़ा,
अहमदाबाद-३८२४२४**

## वह जो साथ है

✍ रामशंकर चंचल

गांव की पगडंडी पर
बैठी
मेरी छोटी-छोटी आंखें,
ताक रही थीं
विराट आसमान.
तो कभी
दूर-दूर तक फैली वसुंधरा को,
जिसका कोई अंत नहीं था.
सोच रहा था
कितनी बड़ी दुनिया है,
सोच ही नहीं सकता.
फिर क्यों सोच रहा हूं
इस दुनिया में दौड़ लगा
पा लूं अपना लक्ष्य/अपनी मंजिल
अकेले ही.
सचमुच बहुत दुर्लभ है यह
सोच घबरा जाता हूं,
तभी दूर-सुदूर नभ में
वह मुस्काया
अनायास गायब थीं सारी
निराशाए/कुंठाएं
सोच रहा था अकेला क्यों
वह जो साथ है,
यही सोच
दे रही थी
अजीब ऊर्जा ताकत.
और मैं उसे समेटे
लग जाता हूं अपने
कर्म/श्रम/साधना में
निष्ठा आत्मविश्वास लिये.
सदैव उसे अपने संग
मुस्काते/साथ देते
जिसे तुम
'ईश्वर' कहते हो.

**मां, १४५, गोपाल कालोनी, झाबुआ
(म.प्र.)४५७६६१**

## ग़ज़लें

✍ अक्षय गोजा

(१)

साथ रहता वो दोस्ती की तरह,
खोलता भेद डायरी की तरह.
फैलती आग की लपट-सी घृणा,
प्रेम-धारा बहे नदी की तरह.
सुनहरा-सा दिखे जो सपने में,
पेश आता वो अजनबी की तरह.
सुमधुर तान-सा लुभाता वो,
बांधता मन को बंसरी की तरह.
चुस्त था चांद ईद का तुम तो,
आये उनतीस फरवरी की तरह.
झूठ भटकाता है अंधेरे-सा,
सत्य दे लक्ष रोशनी की तरह.
आंख खुलने से नींद आने तक,
ज़िंदगी चलती है घड़ी की तरह.
सांसें जी-भर न ले सकें जो रहें,
अपने ही घर में अजनबी की तरह.

(२)

सागर विशाल भी कभी प्यासा दिखाई दे,
जगमग सितारों में भी अंधेरा दिखाई दे.
घर खेत सारा कर्ज़ में डूबा दिखाई दे,
वो ख़ुदकुशी के बाद भी बोता दिखाई दे.
भूला हूं दोस्तों को ये दुश्मन ही याद हैं,
दुश्मन का दोस्त में सदा साया दिखाई दे.
घर में नहीं दिखे कोई अपना तो क्या हुआ,
जब भीड़ में यूं ही कोई अपना दिखाई दे.
रोता रहा जगत से तेरे जाने पर भंवर,
तू यादों में मगर सदा हंसता दिखाई दे.
अक्सर कोई दिखाई दे रोनी-सी शक्ल में,
हर हाल में अगर कोई हंसता दिखाई दे.
घर क्या जहां न सूखती साड़ी कोई दिखे,
बच्चा जहां नहीं कोई रोता दिखाई दे.
रहता है इंतज़ार नयी मुश्किलों का रोज़,
जब मुश्किलों में ही नया रस्ता दिखाई दे.

✉ चांदपोल गेट के पास, जोधपुर-३४२००१

**लघुकथा**

## मुट्ठी भर दाल

✍ राजेंद्र प्रकाश वर्मा

महिला दरोगा बसंती के सामने बुधिया अपराधी की तरह खड़ी थी. उस पर ठाकुर गुलाब सिंह के यहां काम करते समय एक हज़ार रुपयों की चोरी का आरोप था. वहीं उसके तीन बच्चे बबीता, कमला और सोनू उसे अश्रुभरी नज़रों से देख रहे थे.

महिला दारोगा ने पहले तो बुधिया से साधारण तौर से पूछा- 'तुमने ठाकुर साहब के यहां रुपयों की चोरी की है. सच बता दो,' हम तुम्हें छोड़ देंगे और ठाकुर साहब भी अपना केस वापस ले लेंगे.' उसने साफ़ इंकार कर दिया. इस पर महिला दारोगा की आंखें लाल हो उठीं. उसने बुधिया की जमकर पिटाई की. फिर भी उसका उत्तर 'ना' में ही था. इसके बाद उसने बुधिया पर थर्ड डिग्री का इस्तेमाल किया. फिर भी उसने यही कहा- ''मैंने ठाकुर साहब के यहां रुपयों की चोरी नहीं की.''

महिला दरोगा जब थक गयी तो उसने कहा- ''बुधिया तुम्हें तुम्हारे बच्चों की कसम है.''

कसम के आगे वह हार गयी. उसने स्वीकार किया- ''हां-हां-हां, मैंने अपने बच्चों के लिए चोरी की है. इतना कहकर उसने साड़ी के आंचल में बंधी मुट्ठी भर दाल को ज़मीन पर बिखेर दिया और वह फफक-फफक कर रो पड़ी.

✉ कवि-कुटीर, ६/११/२५५, मुगलपुरा, फैजाबाद २२४००१

<u>परिशिष्ट</u>

# संस्कृति संरक्षण संस्था

संस्था के उद्देश्य प्राप्ति की दिशा में समय-समय पर अनेक कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं. १९ सितंबर २००९ को विवेकानंद साइंस व डिग्री कॉलेज सिंधी सोसायटी, चेंबूर, मुंबई-४०००७१ में एक **काव्य-सृजन प्रतियोगिता** आयोजित की गयी जिसमें विभिन्न विद्यालयों के आठवीं-बारहवीं (क-वर्ग) और स्नातक व स्नातकोत्तर (ख-वर्ग) विद्यार्थियों ने भाग लिया. काव्य-सृजन के लिए प्रतियोगिता प्रारंभ होने से मात्र आधा घंटा पूर्व ही प्रतियोगियों को आठ-आठ विषय बताये गये जिनमें से उन्हें कोई एक विषय चुनना था. यहां पर उन कविताओं को प्रस्तुत किया जा रहा है. जिन्हें 'ख' वर्ग में पुरस्कार प्राप्त हुए. लगभग ७ विद्यार्थियों ने प्रतियोगिता में भाग लिया.

**प्रथम पुरस्कार (५०१ रु.)**

## संबंध

✍ **पिंकी बोकोलिया** (प्रथम वर्ष- स्नातक)

संबंधों से भारत है जुड़ा
इन्हीं से इंसान बनता है बड़ा,
इन संबंधों से भारत को
माना जाता है विश्व में बड़ा.
भाई-बहनों से यह संसार परिचित है
यदि बहन विपदा में है, तो भाई पीड़ित है,
बहन की रक्षा भाई का धरम
इसी को कहते हैं- सबंध - रक्षाबंधन.
गुरू-शिष्य का संबंध तो
चीर देता है हर मुसीबत को,
गुरू की शिक्षा से शिष्य में
रुचि पैदा होती जीने में.
रिश्ते-नाते तो कई हैं
प्रेम-भाव से जीते हैं,
हम भारतवासी
संबंधों से ही तो बनते हैं.
सिपाही का देश से
संबंध है अपार,
देश-प्रेम के कारण आज
भारत हुआ अंग्रेज़ों से आज़ाद,
जीवन में संबधों की भूमिका महत्वपूर्ण है
इनके बिना जीवन में लगता खालीपन है,
संबंध नहीं तो हम इंसानों में
रह जाता बस स्वार्थीपन है.
मानवता है संबंध अलौकिक
इसकी रचना है संसार,
प्रेम है इसकी पहली सीढ़ी
माने यह संसार.
संबंधों से इस जीवन में
खुशियां अनेकों पैदा होतीं,
यदि संबंध नहीं आपस में तो
स्वयं भारत मां भी रोती.

---

**द्वितीय पुरस्कार (२५१ रु.)**

## *देश के सपूत*

✍ **मीनाक्षी छीपा** (प्रथम वर्ष स्नातक)

भारत के नौजवानों
आज़ादी के दिवानों
इस देश के कोने-कोने में
पहुंचा दो ये पैगाम
आराम है हराम, आराम है हराम.
देखो देश में अब तक
कितने काम अधूरे,
मिलकर हाथ बंटाओ
तभी ये होंगे पूरे,
आराम है हराम.
तुम तो कल की युवा पीढ़ी
तुम भारत के वीर-लाल,
मां के हो तुम सच्चे सपूत तो
हो जाओ तैयार साथियों हो जाओ तैयार.
आंख गड़ाये बैठे दुश्मन
आओ उन्हें सबक सिखायें,
भारत मां की रखवाली में
जी-जान से दम लगायें.

गांव-गांव और डगर-डगर में
एक नयी उमंग जगाओ,
कृषि, शिक्षा और विज्ञान में
अपनी अलख जगाओ,
    भारत मां की धरती पर
    अपना नाम कमाओ,
    तन-मन-धन से सेवा करके
    अपना कर्ज चुकाओ.
तुम तो कल की शान हो
भारत मां के लाल हो,
भारत की गौरवपूर्ण अस्मिता को
अमर बनाने में सहकारी हो,
    भारत की शक्ति हो तुम
    भारत की भक्ति हो तुम
    असीम शक्ति के नौजवानों
    तुम तो कल की शान हो.
एक नयी उमंग और उत्साह से
शिक्षा की नयी जोत जगाओ,
वर्तमान को सुरक्षित बनाओ
हो जाओ तैयार साथियो, हो जाओ तैयार!!

---

**प्रोत्साहन पुरस्कार (१०१ रु.)**

# मेरी धरती

✍ **डिंपल कांसोटिया** (प्रथम वर्ष-स्नातक)

भगवान ने जब ये दुनिया रचायी, तब धरती ने जन्म लिया
है उपकार उसी धरती का, जिसने हमें उत्पन्न किया
उस धरती मां ने हमको, पलपल शरण में अपने लिया
है उपकार उसी धरती का, जिसने हमें उत्पन्न किया.
इस धरती पर घटी हुई है, कई वर्षों की यादें
सुना शहीदों ने देश रक्षा के पूरे किये यहां वादे
देश की आन की खातिर-प्रथम सहयोग इसी धरती ने दिया,
है उपकार उसी धरती का, जिसने हमें उत्पन्न किया
घटी शहीदों की गाथाएं, घटी हैं कई कहानियां
बापू, नेहरू और गांधी ने, इस पावन भू पर जन्म लिया.
खून से सींचा किसी ने इसको, खेतों ने शृंगार दिया.
मतलब की भरी इस दुनिया में, कुछ ने पल-पल अपमान किया,
पर मेरी धरती मां ने, हर बार शरण में हमें लिया
है उपकार उसी धरती का, जिसने हमें उत्पन्न किया
नहीं बनी वो स्याही जिससे, गुणगान लिख सकें भूमि का
नहीं बनी वो कलम जिससे, इतिहास रच सकें भूमि का,
रच लो कई तुम काव्य धरती पे, महिमा का न अंत हुआ
है ही कुछ वो लीला न्यारी, मेरा भाग्य यहां मेरा जन्म हुआ.
मेरी धरती मां मैंने भी तो, इस भूमि पर जन्म लिया
सदा करो प्रणाम इसे, सौभाग्य तुम्हें भी तो है दिया.

---

**लघुकथा**

# दहेज़

*✍ डॉ. भारती*

स्कूल से घर आकर प्रिया ने बैग रखा और मेरी गोद में बैठकर रोना शुरू कर दिया.

''प्रिया, अरे बेटा! तुम रो क्यों रही हो, क्या हुआ तुम्हें?''

''पापा! आप मुझसे वादा कीजिए, मैं जो कुछ आपसे मांगूगी वह आप मुझे ज़रूर देंगे.

''हां ! हां ! बेटा बोलो तो सही! क्या चाहिए तुम्हें?''

''पापा मुझे नयी कार चाहिए?''

''लेकिन बेटा तुम्हारे पास तो पहले से ही ढेर सारे खिलौने और कारें हैं..... अब नयी कार क्यों चाहिए?''

''पापा मेरी गुड़िया की जान खतरे में है इसलिए. प्लीज पापा. मेरी गुड़िया को बचा लीजिए.''

''बात क्या है प्रिया?''

''पापा पहले तो पिंकी ने अपने गुड्डे से मेरी गुड़िया की शादी कर हमसे हमारी गुड़िया छीन ली और अब कहती है, दहेज में नयी कार दो वरना... जला दूंगी तुम्हारी गुड़िया को.' प्रिया ने सुबकते हुए कहा.

**द्वारा श्री संजीव कुमार सिंह,**
**कंठ कॉलोनी, अरगड़ा रोड,**
**लल्लू पोखर, मुंगेर-८११२०१**